

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180712

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83
N 14 N
Accession No. H 8203
Author J. M. S. S.
Title J. M. S. S. 1857

This book should be returned on or before the date
last marked below.

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद ।
मुद्रक—निषाद प्रेस, प्रयाग ।

एक

जेठ का महीना था ।

लगन के दिन थे । अबकी दो साल बाद ये दिन आये थे । इन दिनों का बाट जोहते-जोहते कई बुढ़ियों को उन्निद्र रोग हो गया था । कोई पोते की लड़की के दामाद का मुँह देखकर मरने की बात करती थी तो किसी का मनोरथ नतनी के बेटे की बहू का घूँघट हटाना भर रह गया था । कोई परपोते का मूँड़न-छेदन देख लेना चाहती थी । किसी की परपोती छिकी पड़ी थी, वह उसका ब्याह देखकर ही इस धरा-धाम से विदा होने वाली थी । विधवा सहुआइन ने बड़े उत्साह से चमचा खुदवाया था, इन्हीं दिनों में वह उसका जग* करने वाली थी...

गरज यह कि लगन के दिनों की इन्तजारी में ढेर के ढेर काम रुके पड़े थे ।

पंडित खोंखाइ भा की नतनी काफी खूबसूरत थी । चौदहवाँ टपकर† पन्द्रहवें में अभी उसने पैर रखा ही था कि यह जेठ का महीना आ धमका । अब उसकी शादी होनेवाली थी । समूचा गाँव चौकन्ना था कि खोंखा पंडित इस परी के लिए कैसा दुल्हा लाते हैं ।

खोंखा पंडित पर प्रजापति विधाता की बड़ी दया थी । सात लड़कियों और पाँच लड़कों के “पूजनीय पिताजी” होने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त था ।

* यज्ञ । † पार कर के ।

पंडिताइन का कद दिन से दिन नाटा होता गया और 'दैव की इच्छा' ही उसके तमाम दुःख-दरों की दवा थी। आँख-मुँह और कान-नाक का नक्शा अच्छा था, सूरत गेहुआँ थी। पंडित की अपनी कांति साँवली थी तो क्या हुआ, बच्चों की शकल-सूरत पर माँ की ही छाप पड़ी थी। पंडिताइन का शील-स्वभाव भी मीठा था, बोल भी उसके मीठे थे।

जथा-जाल* मामूली था। पेशा था पंडिताई का। जमीन इतनी ही थी कि चार महीने का बुतात उसकी उपज से निकल आता। विद्या से ही उनकी असल आमदनी थी। भागलपुर, मुँगेर, संधाल-परगना और पूर्णिया—इन चारों जिलों में खोखा पंडित का नाम था। आवाज सुरीली और मीठी होने से भागवत की उनकी कथा लोग कान पाथकर† व मन लगाकर सुना करते। अब तो खैर सर्धा-विश्वास कम हो गया, पहले मगर भागवत से काफी आमद थी। पुराने दरें की साहस्रर्ची और पास-पड़ोस के लोगों से यश पाने की भूख—इन दोनों लतों ने खोखा पंडित को तबाह कर रखा था। पहली लड़की की शादी अच्छे घर-वर देखकर की थी। सब ने उस रिश्ते को पसन्द किया था। हिटलर की लड़ाई छिड़ने वाली थी। चावल रुपये का दस सेर और घी सवा सेर आता था। पूस में साल भर का खेवा-खर्चा जुटाकर पंडित घर में भर लेने और खुद निकल जाते जजमनिका‡ में, पूरब या दक्खिन की ओर।

सौराठ× में शादी के उमीदवारों का जो मेला लगता है, पंडित अपने बेटों को लेकर वहाँ पहुँच चुके थे। लड़की या लड़के का ब्याह ठीक कराने के लिए गाँव के और लोग भी सौराठ गये थे।

घर में ब्याह की पूरी तैयारी थी। महीन चावल, अरहर की दाल, गेहूँ का आटा, घी, तेल, कई किस्म के अचार, धोतियों के दो जोड़े

* धन-संपदा, जर-जमीन। † फैलाकर, बिछाकर। ‡ यजमानी, पुरो-हिताई। × एक स्थान जहाँ ब्याह की बात पक्की होती है।

दुपट्टा, पगड़ी, घूनस,* दो साड़ियाँ, सुपारी और चीनी...बिसेसरी की नानी ने तमाम जरूरी चीजें जुटा रखी थीं ।

पंडित ने स्वयं नतनी का नामकरण किया था—विश्वेश्वरी ! भूल से भी उनके मुँह से ‘बिसेसरी’ नहीं निकलता । एक-एक अच्छे मानों प्रयत्नपूर्वक कंठ, तालू, होठ और दाँत-जीभ से टकराकर निकलता । लोगो से शब्दों का शुद्ध उच्चारण करवाने का उनका उत्साह अब तो काफी ठंडा पड़ चुका था लेकिन पंडिताइन को वह यदा-कदा फिर भी डाँट दिया करते थे—“क्या बिसेसरी, बिसेसरी करती हो ! तुम्हारे पिता तो वैयाकरण केसरी थे न ? बाप का संस्कार क्या कौड़ी भर भी तुम्हारे हिस्से में नहीं पड़ा ? हे राम !!”

ऐसे अवसरो पर पंडिताइन गम खा जाती, बकर-बकर ताकती रह जाती अपने पतिपरमेश्वर के मुँह की ओर । बेचारी ने संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के सम्बन्ध में अनेकों प्रवचन सुन रखे थे लेकिन ऐन मौके पर मानो उसकी जीभ फिसल जाती—“बिसेसरी !”

आखिर एक दिन यह अफवाह उड़ ही गई कि आज संध्याकाल खोखा पंडित सौराठ से दूल्हा ला रहे हैं...शकल-सूरत तो उसकी ठीक है मगर उमर अधिक है...बहुत बड़ा काश्तकार है...सीतामढ़ी से पच्छिम कहीं उसका घर है...यह पाँचवीं बार वह दूल्हा बन रहा है...

गाँव के सयानों ने अपने को इस पर ‘अगम† कुआँ’ बना लिया । इस अफवाह पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी करने से उन्होंने बिल्कुल इन्कार कर दिया । मुँहफट लोग फूटे ढोल की तरह इधर-उधर बोलते फिरे, डोलते फिरे !

औरतों की कानाफूसी पंडिताइन के लिए दुर्श्चिता का विषय बन

*धूँधटदार सेहरा । †परम गम्भीर ।

गया । रामेसरी को वह क्या कहकर दिलासा दे, कुछ समझ में नहीं आ रहा था ।

रामेसरी बड़ी लड़की थी और आज तेरह साल से विधवा थी । उसने बड़ी कोशिश की कि समुराल में ही जमी रहे लेकिन जेठानी और देवरानी ने बेचारी के खिलाफ एक अजीब संयुक्त-मोर्चा बना लिया तो भागकर माँ-बाप की छाया में आ गई थी ।

अपने पिता की इधर की गति-विधि से रामेसरी बड़ी शंकित रहती थी । शंकित होने का कारण क्या था ?

कारण यही था कि रामेसरी को छोड़ कर बाकी छहों बेटियाँ खोखा पंडित ने बेच डाली थीं ।

महेसरी से उन्हें ११००) मिले थे ।

भुवनेसरी से ८००) मिले थे ।

गुनेसरी से ७००) मिले थे ।

गुंजेसरी से १०००) मिले थे ।

वानेसरी से ७००) मिले थे । और—

धनेसरी से ६००) मिले थे । और अब बिसेसरी का नम्बर था । फसल तैयार खड़ी थी, कटने भर का विलम्ब था !

रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नहीं रोई जितना कि बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी । सभी बहनें माँ-बाप को सराप दिया करती थीं । कोई गूंगे के पल्ले पड़ी थी तो कोई चौड़म के पल्ले । कोई तीन जिला पार फेंक दी गई थी तो कोई पाँच सौ कोस पर । उनमें से चार को भाग्य ने वैधव्य के बीहड़ जंगल में डाल दिया था । एक पगली हो गई थी, एक को उसके आदमखोर पति ने किरासन तेल की मदद से जलाकर खाक कर डाला था ।

अपनी बच्ची के सौन्दर्य पर जहाँ उसे अभिमान था, वहीं अपने

बाप के राक्षसी लोभ पर उसके मन में घृणा ही घृणा थी। कई बार वह सोचती कि बिसेसरी को कनेर की गुठली घिस कर पिला दे ! क्या करेगी जीकर बिसेसरी ? ऐसे जिन्दगानी से मौत लाख गुना बेहतर !! मगर, माँ का मोह रामेसरी के परिताप पर मानो चंदन का लेप चढ़ा जाता। वह सोती हुई बिसेसरी को खींचकर अपनी छाती से सटा लेती। होठों को आहिस्ते से चूमकर गाल से गाल सटाकर अपनी बेचैनी पर हावी हो जाती। साँस अपनी स्वाभाविक गति पर आ जाती और फिर निद्रादेवी का दरबार बेचारी को अन्दर दाखिल कर लेता।

रामेसरी ने ममता का मन्त्रन और स्नेह की मुधा खिला-पिलाकर बिसेसरी को पाला-पोसा था। बड़े ही जतन से उसने लड़की को अपर प्राइमरी* तक शिक्षा दिलवाई थी...

रामेसरी थोड़ी देर अकेले में जाकर चटाई पर औंधी लेट गई, भाभियों की नजर बचाकर। वह बहुत कुछ सोचती रही—लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार है ? बाबू (पिता) को यह हो क्या गया है ? दूल्हे को आने तो दो, उस बुढ़े के माथे पर अंगारे न डाल दूँ तो रामेसरी मेरा नाम नहीं ! एक बुढ़ा मेरी लड़की का सींथ भरेगा, मुँह झुलसा दूँगी मरदुए का !...आवेश की भाफ निकल गई तो उसे अपनी सामर्थ्य का ख्याल आया...मैं कर क्या सकती हूँ ! चीखूँगी और चिल्लाऊँगी और अपना सर पटकूँगी, पिताजी को असह्य होगा तो मुझे किसी कमरे में बन्द करके बाहर से साँकल चढ़ा देंगे; शादी तो होकर रहेगी...या, माहुर† का पर्वध कल्लू कहीं से और खिला दूँ छोकरी को...

बेसुधी में रामेसरी की पलकें झपक आईं।

*दर्जा ४ तक। † विष्णु, जहर।

दो

ज्यादा तो नहीं, पाँच ही सात नौजवानों का एक गुट था गाँव में। सयाने लोग परिहास में इस गुट को “बम-पाटी” कहा करते। ऐसा कहलाना वे नवयुवक अपने लिए शान की बात समझते थे।

जबार में ही हाई स्कूल खुल गया था, मिडिल स्कूल तो खैर पाँच कोस के उस इलाके में अब तीन थे। गाँव में अपर प्राइमरी स्कूल था ही, संस्कृत पाठशाला भी थी। पढ़-लिखे लोग नजदीक और दूर के शहरों में नौकरी कर रहे थे। मँहगी के इस जमाने में समूचे परिवार को साथ रखना उन्हें अखरता था। दूसरी बात यह भी थी कि सबके पास दो-दो, चार-चार बीघा खेत थे, घर था, बगीची थी, आम के दो-चार, दस-पाँच पेड़ थे, मछलियों के लिए सामूहिक पोखरा था—गाँव की इस पुश्तैनी सपदा को छोड़ने के लिए आखिर कौन तैयार हँ ? हाँ, ताँन-चार ऐसे ‘बड़े बाबू’ भी थे जो अकबाला ससुराल वालों की मेहरबानी से सरकारी नौकरी पा गये थे और अब तरक्की करते-करते संक्रेटरियट की अँगनई में दाखिल हो बैठे थे। उनकी दुनिया अब इस दुनिया से एक-दम अलग हो चुकी थी। गाँव वाले उनकी नजरों में अब उजड़ू व गँवार थे। दफ्तर का काम कर चुकने के बाद अधिकांश समय उनका अपने-अपने बँगले की बैठक में आरामकुर्सी पर कटता था। बैठे-बैठे थक—बूढ़े सॉङ की तरह अधमुँदी आँखों से वे जुगाली किया करते थे—श्री-कृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह, कृष्णवल्लभ सहाय, नेहरू, शेख अब्दुला...द्रूमैन और स्टालिन...डेमोक्रेसी, कम्युनिज्म, अमेरिका, रूस, चीन...डी-डी-सी,* कोसी प्रोजेक्ट...मँहगाई, वेतन वृद्धि, फेमिली प्लानिंग...अरविंद और गोगिया पाशा...लड़के को अमेरिका भेजवाना है...दामाद को टाटा में घुसाना है...

*दमोदर-वैली कॉर्पोरेशन।

मगर मामूली नौकरी पेशा लोगों के लिये तो यह सब संभव था नहीं, वे तो गाँव की अपनी दुनिया को बिलकुल छोड़ नहीं सकते थे। घर-गिरस्ती की निगरानी के लिए इस श्रेणी के शिक्षित ग्रामीण अपने लड़के को घर पर ही छोड़े हुए थे। पास के स्कूल में ये पढ़ते भी और घर के कामों की व्यवस्था में परिवार की सहायता भी करते। मैट्रिक हो जाने पर इनमें से बहुतेरे मधुबनी या दरभंगा के कालेजों में आगे की पढ़ाई के लिए भर्ता हो जाते। तो भी अपने घर-गाँव से इनका संपर्क टूटने नहीं पाता।

इन्हीं युवकों ने गाँव में पुस्तकालय की स्थापना की थी। मॉग-मूँगकर किताबें इकट्ठी की गई थी, दो-तीन अखबार भी आने लगे थे। शाम को गाँव के बाहर मैदान में गेंद और कबड्डी खेलते जाकर।

समय की धारा से वे अपरिचित नहीं थे। बड़ों-बूढ़ों की कठोर से कठोर नुक्ताचीनी उनसे सुनी जा सकती थी। गाँव का मुखिया चीनी और मिट्टी का तेल कन्ट्रोल रेट पर और सो भी समय पर कम ही लोगों को देता था। अपने मकान के सामने उसने बीस गज लम्बी बॉस गाड़ रखी थी जिसके छोर पर तिरंगा फहरा रहा था। कपड़े की परमिट में भी लाइसेन्सदार मारवाड़ी से साँठ-गाँठ करके मुखिया काफी कमा चुका था।

पिछले साल “बमपाटी” वालों ने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के पास दरखास्त दी—“हमारे गाँव का मुखिया चीनी और किरासिन के बँटवारे में धाँधली करता है, इस गड़बड़ी को फौरन दुरुस्त किया जाय।”

स्प्लार्ड-इन्स्पेक्टर आकर गवाही ले गया। दरखास्त पर नौ आदमियों के हस्ताक्षर थे। मुखिया के आतंक से इन्स्पेक्टर के सामने पाँच जने ही आये। उन पाँचों के नाम पर अलग-अलग कार्ड बना दिया, बस !

और तब से समूचे गाँव पर “बमपाटी” वालों की धाक जम गई। गरीब-गुरबा बड़ों की आँख बचाकर इन नौजवानों से बात-विचार करने लगे।

इनका अड्डा दालानों पर या बैठकबाजी के लिए निश्चित खुली जगहों

में न जमकर किसी प्राइवेट घर में अथवा गाँव के बाहर किसी बाग में, किसी बरगद या पीपर-पाकड़ के तले जमा करता ।

गुट की गति-विधियों से परिचित दो-तीन बहू-बेटियाँ भी थीं गाँव में । एक नौजवान ग्वाला था ।

बैठक या अड्डेवाजी के लिए 'एजेडा' जैसी कोई चीज पहले में तय करके नहीं रखी जाती ! जब जैसा मौका आया वैसी बात उठी और 'ऐक्शन' लेने या न लेने का फैसला ले लिया गया ! यह गुट अपने आप में दर-असल एक मौजी गिरोह था । खेल-क़द, मनोरंजन, मामूली बात-विचार और छोकड़ों की आपसी शिकायतों को सुलभाने तक ही इसकी गति-विधि सीमित थी । लेकिन पिछले साल एक ऐसी घटना हो गई कि गुट को सयानों के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करना पड़ा । और, तभी से चंद किशोरों की यह छोटी-सी जमात "ब्रमपाटी" जैसे गौरवपूर्ण नाम से भूषित-भाषित होने लगी । रोप, आवेश, व्यंग और चिढ़ के मारे खोला पंडित ने ही इस गुट का ऐसा नामकरण किया था । क्यों ?

क्योंकि पंडित के स्वार्थ पर गुट ने करारी चोट की थी ।

चतुर्भुज भरी जवानी में इस धरती से उठ गया था । मूर्खता, गरीबी, दश कट्ठा ऊसर खेत और आठ धूर* बास भूमि—विरासत में बाप-दादों से बेचारे को यही संपदा मिली थी । बारह साल की छोटी आयु में ही लहेरियासराय के किसी होटल में वह अग्निहोत्री की ट्रेनिंग लेने लग गया था, पीछे एक अच्छे रसोइये के रूप में वहीं उसका विकास हुआ । दो साल वहाँ और बारह साल मुजफ्फरपुर-पटना के कई एक छोटे-बड़े होटलों में कलछी-चम्मच भाँजता रहा था, तब जाकर चार सौ रुपये जमा हुए थे और शादी हो सकी थी ।

चतुर्भुज का बाप खोखा पंडित का चचेरा था । वह भी कम उमर में

*बिखांसी रसोइया ।

मरा था। चतुर्भुज खोंखा पंडित को फूटी आँखों भी नहीं सुहाता था। पंडित की मन्शा रही कि परेशान होकर और तंग आकर यह भाग जाय कहीं तो इसकी घराड़ी* पर अपनी दखल जमा लेंगे, उसमें भाँटा-रमझिङ्नी† उपजावेंगे। मगर चतुर्भुज के जीते जी खोंखा पंडित का वह मनोरथ पूरा नहीं हो पाया।

चतुर्भुज का बड़ा लडका माहे बाप से चार कदम आगे था—समझ-सूझ में भी और जीवट में भी। वह हिंदी मिडिल और संस्कृत-प्रथमा पास करके कुछ दिनों तक कानपुर की हवा खा आता था। था तो खूबसूरत मगर कपार पर बार्ड और घोड़े के खुर का निशान था, बचपन में चोट लगी थी। अठारह साल की उमर थी। खोंखा पंडित की निगाहों में वह भले ही काँटा हो, दूसरे सभी उसे प्यार करते थे।

पिछले वर्ष पंडित ने माहे के पिछवाड़े में दो हाथ चौड़ा, दस हाथ लंबा और तीन हाथ गढ़ा खुदवा लिया।

इस गढ़े में कलमी आम के नये पेड़ों के लिए खाद तैयार करना है—यही कहना था पंडित का। माहे ननिहाल गया हुआ था। उसकी माँ रिश्ते में खोंखा पंडित की पतोहू होती थी लेकिन गालियों की बौछार अधिक देर तक वह बर्दाश्त कहीं कर सकी? उसने आखिर अपना मुँह खोला। वह उन्हें एक के बदले चार सुनाने लगी तो भंग पीसने का सोंटा उठाकर पंडित उस औरत पर बरस पड़े। स्वाद ले-लेकर दोनों तरफ की गालियाँ सुनने वालों को अब पड़ोसी की मर्यादा का ध्यान आया तो वे भी दौड़े और खोंखा पंडित को सँभालने लगे। मगर बादल तो बरस चुका था, रह गया था धुला-फीका आकाश!

माँ के बुलाने पर अगले ही दिन माहे ननिहाल से दौड़ा आया। बड़ी देर तक वह माँ से घटना का विवरण सुनता रहा, शांतिपूर्वक। फिर

* गृहभूमि, डीह। † बैगन-भिंडी।

दोस्तो से मिलने गया। बिना उनकी राय लिये, कुछ निर्णय करना माहे के बूते की बात नहीं थी।

दिगम्बर मल्लिक माहे का दिली दोस्त था, नाइन्थ क्लास तक पढ़ कर स्कूल छोड़ बैठा था। वह काफी चतुर तो था ही, धनी घर का लड़का होने से लोग उसे आदर और गौरव की दृष्टि से देखते थे। नौजवानों पर भी उसकी अच्छी धाख थी। धन या शिक्षा ने दिगम्बर के अन्दर घमंड उस मात्रा में नहीं भरा था जिस मात्रा में नम्रता। छोटी-बड़ी आयु के लड़के ध्यान से मल्लिक की बातें सुनते थे।

माहे का परशानी दिगम्बर को अपनी परशानी मालूम हुई। वह काफी देर तक इस पर सोचता रहा। नौजवानों का स्वयं-निवाचित नेता होने से एक साथी की समस्या को सुलझाना वह अपना फज समझने लगा। सबसे पहले उसने मुखिया स भेंट की और अनुरोध किया कि वह खोखा पंडित से कहकर माहे के पिछवाड़े का गढ़ा भरवा दे। मुखिया को सब बात मालूम थी, पंडित की जोर-जबर्दस्ती का भी उसे अच्छा तरह पता था। तो भी कई दिनों तक वह टाल-मटाल करता रहा।

मल्लिक, माहे और दूसरे नौजवान चुप नहीं बैठे थे। एक कातवाल (चौकीदार) को समझा-बुझाकर अपने साथ थाना ले गया। हड कानिस्टबिल* तिरहतिया बाभन था और उस युवक की चाची के फुफेरे भाई का सरबेटा† था। मय कोतवाल के बयान के, वह माहे का कंस थाने में दर्ज करा आया। पड़ोस के गाँव में एक नामी कम्प्यूनिस्ट लीडर थे, कामरेड तेजनारायण भा। माहे और मल्लिक खुद उनसे मिल आये। नजदीक के हाई स्कूल और मिडिल स्कूल के मास्टर्स को भी समस्या की जानकारी करा दी गई। बूलो टेथ‡ में पढ़ता था, फकड़ा× जोड़ने का

* कान्स्टेबल। † साले का लड़का। ‡ दसवाँ दर्जा। × तुकबंदी, पद, फिकरा।

अद्भुत सामर्थ्य थी उस छोकरे में । अगले ही दिन उसने एक फकड़ा तैयार किया और जमात के सामने लिखित रूप में उसे पेश किया । मल्लिक की आज्ञा से बूलो ने बाँच कर अपनी रचना सुनाई ।

खोंखा पंडित बड़े सयाने
दच्छिन-पच्छिम गये कमाने
बेटा रोया, बेटा रोई
करम न इनसे छूटा कोई
चूहा मारो, करो पराश्रित
पाप हरेँगे खोंखा पंडित
रात बता देंगे यह दिन को
चूड़ा-दही खिलाओ इनको
माल मुफ्त का यदि पा जाएँ
फिर तो दुम दिन-रात हिलाएँ
पैसा पावें, गूह चाट लें
सूना पावें, गला काट लें
बड़े घाघ हैं पंडित खोंखा
ईसर को भी देते धोखा

सुनते समय बीच-बीच में हँसी के फव्वारे छूटते रहे । फकड़ा लाजवाब बना था, इस पर सभी एकमत थे । माहे ने कहा :

‘दच्छिन-पच्छिम’ की जगह ‘दच्छिन-पूर्व’ कर दो क्योंकि हमारे खोंखा बाबा कमाने के लिए मुजफ्फरपुर से पच्छिम कभी नहीं गये हैं, हाँ पढ़ने के लिए, सुना है कि काशी गये थे कभी !”

मंडली फिर हँसने लगी । बूलो ने संशोधन पसन्द किया लेकिन ‘दच्छिन-पूर्व’ नहीं क्योंकि एक मात्रा घटती थी; उसने ‘दच्छिन-पूरब’ कर के समूचा फकड़ा एक बार सुना दिया ।

दूसरे दिन गाँव के लड़के इधर से उधर इन पदों को गाते फिरे ।
पंडित भीतर ही भीतर बेहद चिढ़े । पंडिताइन से सलाह ली । उसे
नौजवानों के पंडित-विरोधी इस आंदोलन की गंध लग चुकी थी, इसीलिए
दस-पन्द्रह दिनों के लिए कहीं पहुनाई में चले जाने का परामर्श दिया ।

खोंखा पंडित ने मिर्जई पहनकर, माथे पर पगड़ी डाल कर दूसरे दिन
अनगुत्ते* इसटीसन का रास्ता पकड़ा था ।

इधर पंडिताइन ने लड़कों से बात-विचार करके उसी रोज गड्ढा
भरवा दिया तो नई पीढ़ी के लोगों को बड़ी खुशी हुई थी । तब से बड़े-
बूढ़े और सयाने लोग नवयुवकों को प्रतिद्वन्द्वी दृष्टि से देखने लगे थे ।

और आज समूचे गाँव की नाक कटने वाली थी । पन्द्रह साल की
बिसेसरी साठ वर्ष के चतुरानन चौधरी को व्याही जाने वाली थी !! दिगंबर
ने यह खबर सुनी तो उसं ऐसा लगा कि किसी ने भर-भर कलछी खोलता
हुआ कड़ुआ तेल बारी-बारी से उसके दोनों कानों में डाल दिया है !

मल्लिक का माथा जोरों से ठनकने लगा, सोचने की रत्ती भर भी
सामर्थ्य उसके दिमाग में नहीं रह गई ।

तीन

खोंखा पंडित ने आधा घंटा बातचीत कर चुकने पर पाया कि आदमी
काफी अकबाली है । उमर जरा ज्यादा है तो क्या हुआ ? कम उमर के
लोग क्या नहीं मरते हैं ? बाबा वैद्यनाथ की अनुकंपा होगी तो इसी
दूल्हे के घर विश्वेश्वरी की कोख से एक से एक इस संतान हो सकती है ।
५०० बीघा जमीन की मलिकाइन बनेगी हमारी विश्वेश्वरी ! इहलोक और
परलोक दोनों बन जायेगा । मेरे नाना के दादा ने इसी आयु में विवाह

* सूरज उगने से पहले ही ।

किया था, लड़की का वयस बारह वर्ष का था और तब उन्हें चार बेटे और तीन बेटियाँ हुई थीं—अर्जुन, भीम जैसे बलिष्ठ; द्रौपदी और सुभद्रा जैसी सुन्दर एवं सुगठित शरीर वाली ! हाँ ! नहीं, ऐसा अच्छा वर अब आगे ढूँढ़े नहीं मिलेगा; ऊँ हूँ...शुभस्य शीघ्रम्...गणेश गणेश, लंबोदर करिवरवदन !!

भावो का आवेग इतना बढ़ गया कि पंडित सौराठ के उस अनुपम लोकारण्य में अपनी जगह छोड़कर इधर-उधर घूमने लगे। घटकराज* मदुकी पाठक पर पंडित जी पूरी तरह निर्भर थे। उन्हीं महानुभाव ने विश्वेश्वरी जैसी कन्या-रत्न के लिए इस प्रकार का परम सुदुर्लभ वररत्न ढूँढ़ निकाला था। जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ—अब और क्या चाहिये ? घटकराज पंडितजी के सहपाठी थे। सुगौना-झ्यौड़ी के पुराने महाविद्यालय में पचास वर्ष पूर्व दोनों जने साथ ही रहते थे। एक ही गृहस्थ-परिवार में दोनों के भोजन का प्रबन्ध था। किसी कारण से पाठक की पढ़ाई छूट गई और अब वह घटकराज के रूप में प्रख्यात थे। रामेसरी को छोड़कर, बाकी लड़कियों के लिए वर खोजने का श्रेय आप ही को प्राप्त था। यह आप ही के शुभ परामशों का परिणाम था कि पंडित जी चार हजार का कर्जा चुका सके और दो बेटों को शादी के बाद अपनी-अपनी विधवा सास की जायदाद हाथ लगी।

पंडित ने घटकराज को तीन रोज से उस बूढ़े वर की अंतर्द्वियाँ उधेड़ने में लगा रखा था और निःसंदेह, इस साधना में साधकप्रवर पाठकजी महाराज को अनुपम सफलता प्राप्त हुई थी।

कितनी जमीन है ?...

नगद कितना है ?...

लहना-तगादा कै हजार है ?...

* ब्याह का संबंध पटाने वाला 'घटक' कहलाता है।

पिछली पत्नियों के कितने लड़के हैं ?...

लड़कों के ननिहाल वाले किस हैसियत के हैं ?...

कोई रखेली तो नहीं है ?...

गोतिया हैं कि नहीं ?...

हैं तो किस हैसियत के हैं ?...

कागज-पत्तर, दस्तावेज-तमसुक, हिंदलोटे* वगैरह जिस संदूक में रखे हैं, उसकी चाबियों का गुच्छा किसके जिम्मे है ?...

असल आयु कितनी है ?...

साल में कै बार बीमार पड़ते हैं ?...

लड़कों से मनमुटाव तो नहीं है ?...

आप रे ! किसका मजाल है जो फलाँ बाबू के बारे में इतनी बातों का पता लगावे ? लेकिन नहीं, है एक बहादुर ! घटकराज मटुकधारी पाठक !!
अ हा हा हा !!!

—इस तरह गद्गद् होकर पंडित जी घटकराज की सुमिरन कर ही रहे थे कि सदेह पाठकजी महाराज जाने किधर से अलक्षित ही आकर सामने खड़े हो गये !

“आइए पाठक जी, आइए । आप ही को तो खोजने निकला हूँ ।
हः हः हः हः !!”

घटकराज ने चट नसदानी निकाली—छोटे श्रीफल की चाँदी-मढ़ी डिब्बिया, चेन लगी हुई ठेपी वाली ।

बाईं हथेली पर कौड़ी भर नस निकालकर उसे पंडित जी के आगे फैलाते हुए वह बोले—‘सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थ सिद्धिः† ! आपका हृदय बड़ा ही पवित्र है खोंखाइ बाबू ! शुद्ध चित्त से आप यहाँ आये थे, बच्ची के लिए अखंड सौभाग्य की कामना बाबा कपिलेश्वरनाथ अवश्य

* हैंड नोट । † सचाई और मेहनत से सब काम बनते हैं ।

पूर्ण करेंगे। पंजीकार से पता लगा आया हूँ, दोनों कुलों में विवाह सम्बन्ध का अधिकार होगा। कोई भी बाधा नहीं, शुभ शुभ शुभ शुभ... दुर्गा, माधव, गणेश..."

प्रसन्नता के मारे खोंखा पंडित ने मुँह बा दिया, वह नस लेना तक भूल गये !

—ऐँ ! सचमुच अधिकार हो गया ?

और नहीं तो क्या ?

अन्दर से जनेऊ जरा निकालकर उसे अंजलि की दशों अँगुलियों में लपेटते हुए पंडित ने कहा—मैं आभारण आपका ऋणी रहूँगा पाठक जी ! आपने हमारी विश्वेश्वरी का उद्धार कर दिया, विश्वेश्वरी का ही नहीं, हमारे एकइस पुरखों का आपने आज उद्धार किया है...

पंडित की आँखें छलक आईं, इससे आगे उसके मुँह से एक आखर भी नहीं निकला। कृतज्ञता के भाव दिमाग की एक-एक रग को फुलाने लगे... इतनी बड़ी खानदान का प्रतापी मालिक आज मेरे दरवाजे को अपने पैरों की धूल से पवित्र करेगा। पास-पड़ोस के इलाकों में नौ-गछिया गाँव का नाम इन्द्रधनुष की तरह अब उजागर हो उठेगा ! विश्वेश्वरी आज रानी बनेगी, वह ऐसे घर की मलिकाइन बनेगी जहाँ घोड़े हिनहिनाते हैं और हाथी भूमते रहते हैं... फिर पंडित की निगाहों में नौ अंक पर दो शून्य नाच उठे, बड़ी शकल में। नौ का वह अंक और उस पर के वे दोनों शून्य धीरे-धीरे बड़े होते गये, बड़े होते गये और बड़े होते गये—

घटकराज ने उसका हाथ पकड़ा—चलिए खोंखाई बाबू, शुभ कार्य में विलंब सर्वथा अनुचित होता है। आज ही रात को सिंदूरदान* हो जाय।

पंडित नस के शौकीन नहीं थे। लेकिन आत्मीयता प्रकट करने के

* सेंथ में सेंदुर डालने की विधि, ब्याह।

लिए वह इस काम में पाठकजी का साथ देते थे । सो, जरा सी नस लेकर खांखा पंडित ने अपने को सँभाला ।

लगन का यह अंतिम दिन नहीं था फिर भी पटापट सौदे पट रहे थे । लड़की वाले और लड़के वाले, दोनों एक दूसरे का शिकार कर रहे थे । कलकत्ते के रॉयल एक्स्चेंज में, बम्बई के कालबादेवी वाले मुहल्लों में और दिल्ली के चांदना चोक की गलियों में सट्टेबाजों की हलचल देखी है कभी आपने ? हाँ ? तो बस समझ लीजिए कि मैथिल ब्राह्मणों की ब्याह की इस अनोखा मंडी में कुछ वैसा ही चल रहा था ! गजब की चहल-पहल थी । ऐसा लगता था कि समूची दुनियाँ के लोग इन चार दिनों के अन्दर ही क्वारा-क्वारियों का ब्याह करा डालेंगे ! घटकों और दलालों की कुछ मत पूछिए, वे अधरे में ही निशाना साधते हैं । रिश्तों की तुक शायद ही कभी ठीक बैठती हो...

नौ सौ रुपये पर बात पक्की हुई थी, पचास रुपये घटकराज को मिले थे । ताड़ के लम्बे पत्ते पर लाल स्याही से पंजीकार ने सिद्धांत* लिखा । वर—बाबू श्री चतुरानन चौधरी—की ओर से पंजीकार को दक्षिण-स्वरूप एक दशटकही नोट मिला ।

पिता की रूढ़ प्रकृति से पूर्ण परिचित होने के कारण साथ के तीनों में से कोई बेटा इस कार्य में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं प्रकट कर सका—एक था पितृभक्त संस्कृत अध्यापक, दूसरा मनुवनी अदालत में किसी वकील का मुहरिर् था और तीसरा मैट्रिक तक पढ़ा था । गठरी-मोटरी, दरी-कम्बल-तकिया, लोटा-खड़ाऊँ ढाने वाला सुवधा भला यह सब क्या जाने ?

नोट की गड़्डी सँभालकर पंडित ने दो टमटम ठीक किये । घोड़े तगड़े

* दोनों कुलों में ब्याह का रिश्ता कायम हो सकता है, वर-वधू का यह सम्बन्ध सर्वथा निर्दोष है...इस प्रकार का शास्त्रीय फर्मान ।

और तेज थे। रास्ता खूब अच्छा नहीं था और मौसम था बरसात का, नहीं तो चार कोस का यह फासला वे डेढ़ घंटे में मार लेते ! खैर, अढ़ाई घंटे तो तब भी काफी थे। ट्रेन से जाने पर कोई फायदा नहीं। और फायदा हो या न हो, अवध-तिरुत-रेलवे (O. T. R.) ऐसे बड़े मेले के अवसरों पर भी सनातन प्रथा से ही काम लेती है ! न निकट ही मिल पाता और न वे चढ़ ही पाते ट्रेन में ! मान लो, इन दोनों मोर्चों में फतह हासिल कर भी लेते तो क्या आधी रात तक नौगछिया पहुँच जाते ? नहीं, बिलकुल नहीं।

तो खोंखा पंडित ने पैसे का मोह छोड़कर यह दो टमटम जो भाड़े कर लिये सो उनकी समझदारी का ही सबूत था।

दूल्हे ने कहा, वह अपने घोड़े पर ही जायगा। उनसे बाद को सौराठ से विदा होगा और तारसराय (स्टेशन) उनसे पहले ही पहुँच लेगा।

उसे अपने घोड़े पर अभिमान था। कथई रंग का औसत कद का वह जानवर वाकई बिजली का लंबोतरा लट्ठू था, जरूर जई और मक्खन खाता रहा होगा !

पंडित को दुविधा में देखकर बुढ़ा उमदवार* बोला—चिंता मत कीजिए रत्ती भर, मैं अभी आया।

यह कहकर उसने घोड़े की पीठ थपथपाई, हल्की हिनहिनाहट अभी-अभी उमड़ते आ रहे बादलों को मानो डोंटने लगी। पच्छिम का आकाश अभी साफ था, सूरज तेजी से नीचे उतर रहा था। लोगों की भीड़ भी क्रमशः छुट रही थी। बदली के आसार देखकर वे पास-पड़ोस के गाँवों में 'रेन बसेरा' के लिए चल पड़े थे। नवजात धान के तोता-पंखी पौधों से लहलहाते खेतों की पगडंडियाँ अपनी छतियों पर हजारों-हजार मानव-चरणों की धमक महसूस करके परम प्रसन्न हो रही थी और सौराठ के उस

* विवाहार्थी।

महामेला को दुआ दे रही थीं। सौराठ है भी बसा ऐसी जगह जिसके सभी ओर कोसों तक खेत ही खेत फैले हैं—धनहर* खेत; बरसात के मौसम में इनकी छटा विलकुल निराली होती है। ऐसे दृश्य से प्रभावित होकर मिथिला के किसी कवि ने कहा होगा :

हे हरित-भरित हे ललिल वेश !

हे छोट-छीन सन हमर देश !!

दूल्हे का सामान, उसका भांजा, नौकर, खोंखा पंडित के दो लड़के अगले टमटम पर थे। घटकराज, पंडित, बड़ा लड़का, सुवधा और इन लोगों की गटरी-मोटरी पिछले टमटम पर।

टमटम चले तो घटकराज और पंडित दोनों बुजुर्गों के मुँह से मंगल-पाठ का श्लोक निकलता रहा :

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजः ।

मंगलं पुंडरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः ॥

दूल्हे का भांजा भी आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण था, स्वस्तिवाचन के इस अवसर पर वही क्यों पीछे रहता ? गंभीर स्वर में उसके मुँह से निकला :

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।

येषां इन्दीवरश्चामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥

और, टमटमवालों ने अपनी टिटकारियाँ भरनी शुरू की। घोड़े सरपट दौड़ने लगे।

पिछले कई दिनों की थकान, मानसिक द्वन्द्व और ऊब, और अब कामयाबी का हल्का-सा नशा—कुल मिलाकर खोंखा पंडित को भपकियाँ आने लगीं। घटकराज ने सहपाठी के भारी सिर को अपनी पीठ का सहारा दे दिया। खुद वह नस की मस्ती में विभोर हो गये।

* धान की खेती के उपयुक्त, सिर्फ धान की ही पैदावार वाले।

चार

आँखें खुली तो रामेसरी चट से उठी और देखने गई कि बिसेसरी कहाँ है, क्या कर रही है ।

घर के बड़े लड़के को पंडित और पंडिताइन 'बच्चन' कहते थे । परिवार के सभी लोग उसे यही कहकर पुकारते, बहुएँ ऐसा नहीं कर सकती थीं । बड़ी बहू तो खैर पति का कोई भी नाम क्यों लेने लगीं ? बहुतो की तरह उसके भी दो नाम थे—बच्चन और गिरिजानन्द ! लाड़-प्यार, आवेग-आवेश के कारण दूसरा नाम दब गया था ।

रामेसरी संतान में सबसे बड़ी थी । बच्चन उससे चार साल छोटा था । वह बत्तीस वर्ष की थी, बच्चन अट्ठाइस का । बाकी भाई-बहिनें ढाई-ढाई, तीन-तीन साल के दम्यानि पैदा होते आये थे ।

अभी जाकर रामेसरी ने बच्चन के घर में बाहर से ही भाँका, कोई नहीं था । फिर वह मझली बहू के कमरे की ओर गई, उधर से हँसने की मृदु-मंद ध्वनि उठी ।

—हाँ, यहीं होगी बीसो मेरी !

रामेसरी बिल्कुल अन्दर आ गई । बोल-चाल बन्द, हँसी-ठिठोली सब बंद । तीनों बहुएँ घर के कामों में मशगूल थीं । एक के आगे सूप था, वह चलनी से आटा चाल रही थी दूसरी के आगे तरकारी काटने वाली हँसिया और परबल-आलू में भरी डलिया पड़ी थी, वह आलू के टुकड़े कर रही थी । तीसरी तिलों से कंकड़ चुन रही थी ।

रामेसरी ने देहली लाँघते-लाँघते ही पूछ दिया—बिसेसरी कहाँ गई? इधर तो नहीं आई ? और माँ को भी तो नहीं देख रही हूँ कहीं !

छोटी बहू के होठ पटपटा उठे—माँ तो मुखियाजी के घर गई हैं... बीच में ही इसके होठ बंद क्यों हो गये हैं ?

रामेसरी को बड़ा ही अजगुत* लगा । छोटी बहू आँखें नीचे करके तिल में से उसी तरह कंकड़ चुन रही थी मानो उसने कुछ भी नहीं कहा है, वह कुछ भी नहीं जानती ! बात क्या है आखिर ?

तरह-तरह के तर्क-वितर्क रामेसरी के हृदय को मथने लगे । जी को उसने कड़ा कर लिया, फिर एक-एक करके तीनों बहुआं के चेहरे ताकने लगी । सब ऊमस के मौसम की भीलों का गहरापन पिये हुए थे ! कोई लहर नहीं, तरंग और चंचलता का नाम नहीं ! अगम, अथाह !

मझली बहू पर नजरें गड़ाकर रामेसरी ने पूछा—तुम भी नहीं जानती हो फुलकुम्मरि ?

परबल आधा ही खुभा था हँसिया के धार में, उभे आधा-आधा करके फूलकुँवरि ने घनी भौंहों वाले कपार पर बल डाला और बोली—क्या ?

—अरे, यही...बिसेसरी कहाँ गई है ?

—मैं क्या बताऊँ दइयनि† !

इतने में बड़ी बहू चलनी के चोकर को अलग रखी चेंगेरी में डालती हुई बोल पड़ी—ताश पीटती होंगी रानीजी, तаш !

—गे मइयो‡ ! तаш ?

—तो और क्या ? सोने की कौड़ियाँ कहाँ से लावेंगी ?

हे भगवती ! यह कैसी-कैसी बात आज रामेसरी को सुनना पड़ रहा है ! ना, यह हो नहीं सकता । बीसो किसी और काम से कहीं गई होगी...

ताश खेलना रामेसरी की नजरों में एक भारी अपराध था क्योंकि उसकी बालविधवा ननद को तаш की पत्तियों ने ले जाकर पेशावर पहुँचा दिया था ! पड़ोस के एक नौजवान ने उस 'मुँहभौंसी' × के मन में

* अयुक्त, अनुचित । † दीदी या लड़की के लिए दुलार का संबोधन । ‡ मइया री मइया ! × मुँहजली ।

‘कोटपीस’ खेल का ऐसा चस्का डाल दिया था कि एक रात वह उसके साथ भाग खड़ी हुई ! और न जाने क्या-क्या हुआ !...

तो अभी इसी बात को लेकर अदगोई-बदगोई* हो रही थी ?

रामेसरी को अपनी बेटी पर गुस्सा आया—कहाँ जाकर बैठ गई है कलमँही !

इसने में पायल की रुनभुन-रुनभुन सुनाई पड़ी, बिसेसरी आ रही थी। रामेसरी घर में निकल आई और आँगन के बीचोबीच खड़ी हो गई।

—कहाँ गई थी ?

—जरदल वाली काकी ने बुलाया था।

—हूँ ! चल, इधर आ !

बीसो अपनी माँ के पीछे हो गई।

दोनों अन्दर आये, गुमगुम। रामेसरी पहियोंवाली पुरानी संदूक पर बैठी, बिसेसरी दोनों हथेलियाँ उलटकर उँगलियों की पीठ पर के सुनहले रोएँ देखती रही। माँ ने उसे बैठने के लिए नहीं कहा।

बीसो माँ की इकलौती लड़की थी। बेटा भी थी, बेटी भी थी। रामेसरी ने बड़े ही प्यार से पाल-पोसकर उसे बड़ा किया था। बड़ी उमर तक निपूती रहनेवाली स्त्री जिस नेम-निष्ठा से, जिस नेह-छोह से तुलसी के पौधे को पोसती है, उसी तरह रामेसरी ने बिसेसरी को पोसा था। कभी अवाच-कुवाच नहीं कहती थी। मारना-पीटना तो दूर, खीझ से भर कर कभी चपत तक नहीं लगाती।

रामेसरी का घरवाला अच्छा पंडित था, नेकनीयत और मिठबोला। तीन वर्ष के उस छोटे से दाम्पत्य-जीवन में रामेसरी पर उसने कभी हाथ नहीं उठाया, कभी गाली नहीं दी। अपने पति से रामेसरी ने रुपये-पैसे तो नहीं, दो-चार गुण अच्छी मात्रा में पाये थे। पिता और पति के स्वभावों

* बुरी आलोचना।

में आकाश-पाताल का अन्तर था । विद्वान् तो दोनों ही अच्छे थे, लेकिन प्रकृति उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की थी । माँ के बाद, पति ही वह व्यक्ति था जिससे रामेसरी के जीवन तत्त्वों का निर्माण हुआ था ।

बिसेसरी ऐसी माँ की बेटी थी । माँ के शील-स्वभाव का असर वह अपनी प्रकृति में अच्छी तरह उतार ले आई थी । अपर प्राइमरी तक पढ़ने का भी यह सुयोग जो उसे मिल सका सो अपनी माँ की बदौलत । नाना की कतई यह राय नहीं थी कि बिसेसरी पढ़े-लिखे । वह तो रामेसरी के लगातार आग्रह का ही यह फल था कि खांखा पंडित अपनी नतनी का स्कूल जाना बर्दाश्त कर सके ।

बिसेसरी अपनी माँ से कोई बात छिपाती नहीं थी, दोनों में अब मानो सहेलियों का-सा लगाव था । माँ ठहरी बाल-विधवा, बेटी ठहरी इकलौती—दोनों एक दूसरी का सहारा थीं, अभिभावक भी थीं और सार्थक भी ।

थोड़ी देर अलग खड़ी रह कर बिसेसरी माँ के बिल्कुल करीब आ गई । बाहर निगाहे फेंककर फिर अपनी नजरे उसने रामेसरी की आँखों में गड़ा द ।

माँ भी बेटी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखने लगी । अनमेल ब्याह के भयंकर परिणामों की कल्पना से उसकी रग-रग दहक उठी, रोंगटे खड़े हो गये । बेटी को खाँचकर माँ ने धड़कते सीने से सटा लिया, बिसेसरी का किशोर कलेवर रामेसरी के अघेड़ बाँहों के घेरे में कस गया । थोड़ी-थोड़ी देर तक एक-एक ही गर्दन दूसरी के कंधे पर पड़ी रही ।

—माँ !

—बीसो !

—आज यह क्या हो गया है तुम्हें ?

.....

—एक बात बताऊँ ?

—बोल !

रामेसरी ने बिसेसरी को छोड़ दिया, वह सन्दूक से सटकर खड़ी हो गई। साड़ी का पल्ला सँभालती हुई कहने लगी—माहे भइया बता रहे थे, यह शादी हम नहीं होने देगे।

रामेसरी के कपार में तनाव पड़ गया, आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। बाहर की ओर एक नजर मार कर वह फुसफुसाई—चुप ! चुप ! किसी ने सुन लिया तो पानी में आग लग जायगी ! माहे तो पागल है, यों ही अल्लम-गल्लम बकता रहता है.....

—दिगम्बर भी तो था।

—गे मइयो* ! और, तू वहाँ यही सब सुनने गई थी ?

बिसेसरी बेखबर नहीं थी। उसे अच्छी तरह मालूम था कि नाना आज रात एक कसाई को ला रहे हैं, धूमधाम से अपनी नतनी का जिवह कराएँगे...जब से उससे बूढ़े दूल्हे की बात सुनी है तब से उसकी कलेजी भुन रही है। अब तक अपनी बेचैनी को वह जन्त किये हुए थी, इसके बाद धीरज ने जवाब दे दिया। तन-मन की समूची ताकत बटोरकर उसने पेरों को लड़खड़ाने से बचा लिया, यही क्या कम था ? बकोटकर आखिर उसने बायें हाथ से ठुड्डी और गालों को दबा लिया। जीभ, तालू, दाँत, मसूँड़े, होठ—सभी उस शिकंजे में कस गये। वह अपने आप में जूझने लगी कि बूढ़े भर भी आँसू गिरने नहीं पाये !

खोपड़ी में मानो बीसियों तकलियाँ बिजली की गति से चल रही थीं—किर्र र्र र्र र्र र्र र्र र्र.....

बीच ही में रामेसरी ने उसे झुकझोरा और चुमकारा, ढाढ़स दिया—पगली कहीं की ! ऐसा भी कहीं हुआ है ?

समवेदना की इस चुमकार ने बिसेसरी के हृदय को मोम-सा पिघला

* री मइया !

दिया । दो बड़ी-बड़ी बूँदें आँखों का कूल-किनारा पार करके नीचे धरती पर गिर पड़ी—टप् टप् !

अपनी साड़ी की आँचल के खूँट से माँ ने बेटी के आँसू पोंछ डाले । थोड़ी देर के लिए उसे अकेली छोड़ कर वह बाहर निकल आई । माहे और दिगंबर भला इस ब्याह को कैसे रोकेंगे, यही बात रामेसरी के माथे में घिरनी* बन कर नाचने लगी । भला, जब दरवाजे पर दूल्हा आकर खड़ा हो जायगा तो उसे कोई किस मुँह से लौटने कहेगा ? ऐसा भी कहीं हुआ है ? बाबू जब हाथ धर के किसी भलमानस† को उठा लाये हैं तो उसकी और अपनी लाज को अलग-अलग करके थोड़े ही देखा जायगा ?.....

पिता की प्रतिष्ठा रामेसरी के संकल्प को जड़-मूल से हिला रही थी । बार-बार वह अपने पर घटा कर इस ब्याह के बारे में सोचने लगी—कैसी अच्छी जोड़ी थी हमारी । लेकिन वह तीन ही वर्ष जिये । माँ-बाप अपने जानते संतान को कुआँ में थोड़े ही फेंकते हैं ? सुना है, धन-संपदा काफी है । रानी बन कर रहेगी मेरी बीसो...उमिर कुछ अधिक है तो क्या हुआ ?

क्या हुआ !...धन-संपदा ही क्या सबसे बड़ी चीज है ? पंद्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी ? हे राम !...

.....मगर, खान-पान, कपड़ा-लत्ता, गहना-गुड़िया, जर-जेवर का अमार लगा रहता होगा उसके 'यहाँ ! नहीं ? ना, जरूर अमार लगा रहता होगा । वह तो अपने इलाके का राजा है !

फिर एक दफे रामेसरी की आँखों के आगे अपनी बेटी का मासूम मुखड़ा जोरों से नाच उठा और उसका सिर घूमने लगा, फिर एकाएक

*लट्ठ । † भला आदमी ।

भवं तन गई । अपने आप वह बुदबुदाई : नहीं, नहीं होगा ! नहीं होगा यह ब्याह !!

तब रामेसरी को माहे और दिगम्बर की बात याद आई...क्या कर सकते हैं वे ?

उपेक्षा भरी हल्की हँसी के सहारे अपनी याद को उसने उन नौजवानों की चंगुल से छुड़ा लेना चाहा कि माँ की आवाज सुनाई पड़ी : बुच्ची !

—आई अम्मा !

यह रामेसरी का दुलार का नाम था ।

वह सँभली, पूरी तरह अपनी चेतना को उसने साकांक्ष बनाया और माँ के सामने जा खड़ी हुई ।

माँ मुखिया के यहाँ से पेट्रोमैक्स लिवा लाई थी ।

—इसे बरामदे में रखवा ले, चौकसी रखना । ऊधमी लड़के कहीं इस पर हाथ-वाथ न डालें !

—अच्छा ।

रामेसरी ने उस बड़े लैंप को माँ वाले घर के बरामदे में रखवा लिया । मुखिया का हलवाहा लैंप रख कर चला गया ।

इसके बाद रामेसरी को माँ का दूसरा आदेश मिला—त्रिसेसरी के बाल सँवारने होंगे, चोटी काढ़नी होगी ।

पंडिताइन ने इस बेवसी पर अफसोस जाहिर किया कि आज नतनी की कंधी-चोटी वह खुद अपने हाथों नहीं कर सकी ! बेचारी को बहुत सारे काम करने थे, अकेली राधा कितना नाचे ! बड़ी और छोटी बहू ने पिछले कई दिनों से सविनय अवज्ञाभंग आंदोलन छेड़ रखा था एक प्रकार का । रसोईघर को रामेसरी सँभाले हुए थी । घर-आँगन का बुहारना-लीपना और अपने तीन बच्चों को सँभालना—मझली बहू के जिम्मे काफी काम था । बड़ी के दो बच्चे बड़े हो चुके थे, दो छोटे थे, छोटी के दो बच्चियाँ थी । दोनों अपने बच्चों में उलझी रहतीं, घर के सामूहिक कामों में जरा भी

दिलचस्पी नहीं लेतीं। खाना तैयार हो जाने पर मेहमान की तरह जार्ती और रसोईघर से खा आतीं, जीमने के बाद धुले हुए हाथ अपनी-अपनी कोठरी में ही आकर सुखातीं ! बच्चे तो खैर अपना-अपना थाली-कटोरा सँभाले दिन भर पंहत जमाये रहते, उन्हें यही ट्रेनिंग मिली थी। मम्तली अपने काम कर चुकने पर सास और ननद की जरा-मरा सेवा जरूर करती थी। बिससरी भी काफी काम करने को तैयार रहती लेकिन रामेसरी को यह पसन्द नहीं था कि लड़की इस जंजाल में अभी से जुत जाय। बाकी तीन लड़कें थे जो परिवार के लिए बाहरी काम भी करते, थोड़ी-बहुत खेती भी और अपना पढ़ते भी।

पाँच

स्टेशन कोस भर दच्छिन था, तारसराय मुड़िया। नौगछिया स्टेशन से सीधे उत्तर पड़ता था।

लेकिन शाम को जो दो टमटम गाँव के भीतर पुंम वे दच्छिन नहीं, उत्तर में आये थे।

ट्रेन से न आकर सड़क में आये थे, इसी से।

खोंखा पंडित ने उमर छियाने की लाख कोशिश की मगर दूल्हे के भाजे ने इतना तो कबूल कर ही लिया कि मामा जी की आयु पचपन वर्ष की है। पंडित की बात से तो यही लगता था कि अधिक से अधिक चालीस की उमर होगी वर की।

दूल्हा के आने में अभी दो घंटे की देरी थी।

शुक्ल पक्ष था तो क्या, बरसात का मौसम शुरू हो चुका था। जेठ सुदि तेरस। ब्याह का लगन साढ़े दस बजे रात का था। ठीक उसी वक्त इस गाँव के भी दो ब्राह्मण-युवकों की शादी कहीं होनेवाली थी।

आरे में भी लोग बातें कर रहे थे । ताजा और गरम खबर लेकिन पंडित की नतनी के लिए आने वाले इस दूल्हे को लेकर ही उड रही थी ।

साफ-साफ तो कोई किसी को बताता नहीं था । सभी कह रहे थे— बड़ा अच्छा हुआ; घर भी ठीक, बर भी ठीक । त्रिमेसरी को जैसा चाहिये वैसा ही दूल्हा, भगवान ने जुटा दिया...” मुदा अन्दर-अन्दर कुछ दूसरी ही बातें मुनाई पड़ती थीं । जहाँ देखिए, दो-तीन जने खड़े हैं या बैठे हैं और फुसफुस चल रही है । चलिए, आप भी अपना कान कहीं भिड़ा दीजिए :—

—देखा तो नहीं है अभी !

—अरे, अभी आया ही कहाँ ?

—दुपहर रात से पहले थोड़े ही आयेगा !

—पंडित तो बुड्ढा बैल पकड़ लाया है, राम-राम !

—समूचे गाँव की नाक काट ली इसने तो ?

—और नहीं तो क्या !

—अच्छा, यह तो बताओ, कितना गिनाया होगा पंडित ने ?

—डेढ़ हजार ।

—धत् ! इतना कौन देता है ?

—अजी नहीं, बड़ी चिड़िया फँसी है !

—हजार से ज्यादा नहीं मिला होगा ?

—आठ सौ !

मुखियाजी के दालान के सामने चार-पाँच जने बैठे थे । अलग एक ओर बंबई—आम का ढेर लगा था । चोरों के डर से तोड़ लिया गया था । अपनी बाड़ी* में मुखिया के बाप ने चार पौधे कलमी आम के लगाये थे । दो बम्बई के, एक सफेदा का और एक कलकतिया का । अब

* वासभूमि के साथ की खाली जगह ।

की मालदह (लंगड़ा) तो दगा दे गया था, बाकी तीनों पेड़ खूब फले थे ।

क्या होगा अधिक लेकर ?—मुखिया का भाई बोला । वह खैनी ठोक कर फिर कहने लगा एक अधेड़ आदमी की ओर अपना रुख करके—
सुनते है फतूरी काका ?

कहो न !—फतूरी बोले और बगल में माथा झुकाकर निचले होठ को दिये की शकल में कर लिया, बड़ी देर तक भीतर दबाकर रखा हुआ सुरती का जूँ 'पिचू' से जमीन पर गिरा । लार की तार टूटी तो धोती के खूँट से हाँठ पोछकर वह पूछने वाले की तरफ गर्दन बढ़ा चुके थे ।

मुखिया का भाई भीमनाथ अपने खास श्रोता को सतर्क पाकर कहने लगा—क्या होगा इससे अधिक लेकर ? देवता-पितर और बाल-बच्चों के लिए यही आम काफी है, ऐं फतूरी काका ? नहीं ?

हाथ फरकाकर फतूरी बोले—दुर् बुढ़बक कहीं के ! आम से भी कभी किसी का मन भरा है ?

सवा पसेरी के वजन की बात सुनकर कमजोर दिल वाला भीम एकदम सिटपिटा गया । दबी आवाज निकली—सो नहीं फतूरी काका ! सो नहीं, मैंने सो कहाँ कहा है ? कहा है कि इतना आम...

इतना आम फतूरी ठाकुर दो बैठक में चट कर जायेंगे—अपना सीना ठोककर वह वीरपुंगव गरज उठे ।

हतप्रभ होकर भीम वहाँ से उठ गया, सुरती अभी तैयार नहीं हुई थी ।

कहाँ चले ?—स्वर हलका करके पूछा ।

—कहीं नहीं, जरा बलुड़े को देखता हूँ...बेचारे को डाँस परेशान कर रहे हैं...बाईं मुट्ठी में चून-तमाकू दावे दाँएँ हाथ से अँगौली की गदा घुमाते हुए चले गये भीमनाथ, सामने जहाँ तीन-चार गाय-बैल बँधे थे ।

तब तक कथा का सूत्र खोला पंडित को छू चुका था ।

—कैसे हो ? यह सब क्या सुन रहे हैं ?

—बुड्ढा बैल यह कहाँ हाथ लगा पंडित के ?

—जिसकी कहीं न पूछ उसी के लिए तो सौराठ का मेला लगता है !

—सुना है कि रतौन्ही* है !

—अजी, दाँत तो बत्तीसो झड़ चुके हैं !

—सुनाई पड़ता है कि नहीं ?

—है मुदा भारी मातबर†...

—सो तो है !

—दो हाथी भी हैं !

—भारी मातबर है, कल यहाँ घर पीछू दो-दो रुपैया बाँटेगा, हाँ !

—हाँ बाबू, खानदान बड़ा हो तो मुट्ठी भी खुली ही होती है ।

—दलिंदर के दरवाजे पर इतना बड़ा आदमी आ रहा है, बात-ब्यौहार में कहीं कुछ अलट-बिलट हो तो अपने नौगछिया की जग हँसाई होगी !

—सो, मुखिया जी रहवे करेंगे ।

इस पर मुखिया भरिया कर बोला—फतूरी काका भी रहेंगे ही !

सभी ने एक स्वर से कहा—फिर काहे की तरदुत !

मुखिया के मकान के कुछ आगे बढने पर छोटा-पुराना एक पोखरा था । पचासों साल की लापवाही का जीता-जागता सबूत । पनियाही घासों की हाथ-भर मोटी धनी तह छाई हुई थी, इस कछार से उस कछार तक । चौकोर गढ़े की छाती पर स्वयंभू घासों का वह अजीब मैदान जेठ के इस महीने में भी आँखों को अच्छा नहीं लगता था । बीचोबीच जाट‡ खड़ी

*रात के वक्त न सूझने की बीमारी । †धनी । ‡लट्ट, लाट ।

थी, बीस-एक हाथ ऊँची रही होगी । अपने पुरखों की इस कीर्ति की ओर से मुखिया और उसके गोतिया लोग बिल्कुल उदास थे । भिंड पर तीन तरफ केवटों और ग्वालों के घर थे, चौथी ओर साहड, जामुन, बेल, गैर, जीमड़, पितोभिया का मामूली जंगल था । गाँव भर की दिसा-फराकत का स्थान । उस ओर की सड़क से बाहर का कोई अंधा आता होता तो विकट दुर्गन्ध के मारे वह यों ही समझ लेता था कि गाँव पास ही है ।

छेदी राउत के बथान की छोर उस पोखरे के भिंड को छूती थी । वहाँ तीन-चार अड़ेड़ औरतें खड़ी थी । वही फुसुर-फुसुर चल रही थी :

—सुना है तुमने ?

—क्या, कुछ बतायेगी भी कि ऐसे ही ?

—खोंखा पंडित की नतनी का ब्याह हो रहा है ।

—कहाँ का लड़का है ?

—लड़का ! हिः हिः हिः हि...लड़का !!

—ठूँठ पीपल की गाँठ उठा लाया है पंडित ।

—भग !

—दुर् जो* ! सच कहती हूँ, तेरी कसम !

—खचिया भर रुपैया गिनाया है पंडित ने !

—अगे मँइयाँ ! एको गो दाँत नहीं होगा उसके...

—त्रिसेसरी कैसे बुड्ढे के साथ सोयेगी ?

—सोयेगी कपार ? कमर कूटेगी ।

—बुढ़वा भारी मातबर है ।

—मातबर होगा तो अपने घर, हमें क्या ? देगी पंडिताइन एक छीमी केला भी हमें ?

दिगंबर का बैठका सूना पड़ा था । तख्तपोश के नीचे सिलेबिया कुत्ता

*दुत् ।

गोलिया कर बैठा हुआ था । आकाश में हल्के-फुल्के धुआँसे बादलों से तेरही चन्द्रमा की हाथापाई देखने लायक थी ।

बूलों की भाभी बीच आँगन में पुराने कंबल के टुकड़े पर बैठी हुई थी । सामने पत्नियाँ से भरी डलिया थी, कटोरा था, तकली थी । गोदी का बच्चा सोने वाला था । अभी वह एक थन को बाएँ हाथ से थामकर हौले-हौले पी रहा था, दाएँ हाथ की पहली-दूसरी उँगलियाँ दूसरे थन की घुंडी पर यों ही फिर रही थीं । माँ तकली-पूनी परे करके अभी सो रहे बच्चे की पीठ और जाँघों पर अपना दाहिना हाथ फेरने में मगन थी ।

अन्दर, घर में लालटेन की हलकी मगर साफ रोशनी छाई हुई थी, वह प्रकाश चौकट लॉकर आँगन की बीच वाली दो हाथ जगह की पारधि को क्रमशः अधिक फैलाता हुआ चला गया था और सामने अमरूद का सादी हरी पत्तियों वाली घनी टहनियों में उलझ कर अपनी गति खो बैठा था ।

हलकी-पतली फुसफुस !

मन की समूची शक्ति लगाकर मुनोगे तो भी पत्ते नहीं पड़ेगा कुछ, हाँ !
तो, भीतर बूलो किसी से सलाह-मशविरा कर रहा होगा ! क्यों, है न यही बात ?

अच्छा ! यह बात है !

बूलो, माहे, दिगंबर...दो और अपरिचित चेहरे ।

फुसफुस !

—जल्दी करो !

—हाँ माहे, देर हो रही है !

—माहे, तुम फौरन निकलो ।

—हूँ ।

—और तुम दोनों भी !

—अच्छा !

बूलों और दिगंबर को छोड़कर बाकी तीन निकल गये, एक-एक करके। अपरिचितों में से एक हेहुआ था, दूसरा गोनउड़ा। हेहुआ केवट था, गोनउड़ा था ग्वाला। दोनों नौजवान थे, मसैं भींग रही थीं।

हेहुआ के चेहरे पर माई की गोटी के दाग थे। साँवली सूत, डील-डौल का अच्छा। कद औसत। पहनावे में नौ हाथ धोती, बस ? नहीं, काले धागों में गुथा हुआ चाँदी का कंठा गले में और दाहिनी भुजापर मूँगे का एक बड़ा सा दाना—छेद के सहारे पीले धागो की तीन बारीक डोरियों से बँधा था...बस !

भूरे बालों वाले श्री गोनउड़ा राउत यादव भाई थे, सूत गोरी-भूरी और आखें बादामी। कद ऊँचा, चेहरा भरा हुआ। पहनावे में धोती। हाथ-गोड़* बड़े-बड़े।

वे दोनों निकल गये तो माहे जरा देर तक भाभी के पास बैठा रहा। फुसफुसाकर वह बोली—देखो बाबू, मार-पीट नहीं करना !

माहे दाहिने हाथ की एक उँगली से बार-बार साफ-सुथरे आँगन की चच्च-चक करती हुई उस धरती पर “माहेश्वर भा”, “माहेश्वर भा” लिखता-मिटता था। अब मार-पीट की बात कान में पड़ी तो एक नजर से भाभी के मुँह की ओर देख लिया, फिर बोला—सब कुछ करना होता है मौके पर रानी जी !

—ऊँ ?

—खेल नहीं है भाभी, एक लड़की के जीवन का सवाल है।

भाभी चुप रह गई, अपने आवेग को उसने रोक लिया। समस्या की गंभीरता पर ध्यान जाते ही उसका चेहरा भारी हो उठा। गोदी का बच्चा

* पाँव।

सो चुका था । उठकर उसे सुलाने चली घर की ओर तो माहे से उसने पूछ लिया—पानी पियोगे बबुआ ?

—पिला दो !

—अच्छा !

माहे सोचता रहा, आज इसको भी नींद नहीं आवेगी । हर बात में भाभी हमारी तरफदारी करती है । हमारे खिलाफ जो भी शिगूफा छूटता है, उसमें यह हमारी ओर से वकालत करती है । हमें बढ़िया से बढ़िया सलाह देती है...ओर मोह तो देखो ! मार-पीट मत करना ! बिसेसरी की भलाई हम जितनी चाहते हैं उससे रत्ती भर भी कम भाभी नहीं चाहती होगी, बल्कि अधिक ही कह लो । मगर हम किसी मुसीबत में पड़ जायँ, यह भी इसे बर्दाश्त नहीं है...नहीं भाभी, हम नाहक मार-पीट नहीं करेंगे ।

भकाभक करते हुए फुलही गिलास में लाकर भाभी ने पानी दिया माहे को । वह गट-गट करके एक ही साँस में सारा खींच ले गया भीतर । आँखें मगर भाभी के ही चेहरे पर नाचती रही थीं ।

भाभी कोई ऐसी सुन्दरी नहीं थी कि लाख में एक हो । हजार में एक शायद रही हो वह । लेकिन थी दिलेर और दिलदार, इस दृष्टि से वह अवश्य ही लाख में एक रही होगी । बूलो की तो खैर वह अपनी ही थी, दिगंबर और माहेश्वर और जो भी कोई उसके संपर्क में थे सभी का मुँह टूटता था नेपाल तराई की इस किसानकन्या की सराहना करते ! किसी दूसरे व्यक्ति की प्रशंसा से उनका जी भले अघा उठता हो, भाभी के गुणगान से कभी उनका मन नहीं भरा ! ऐसी थी बूलो के भाई की यह घर वाली !

छः

नौ-दस साल की एक लड़की आई और बिसेसरी के पास जाकर बैठ गई । उसके बाल सँवारे जा चुके थे, चोटी गुँथ चुकी थी, आँखों में काजल लग चुका था ।

गहने रामेसरी के अपने कम ही थे। अपनी हँसली दो साल पहले ही उसने बेटी के गले में डाल दी थी। पति की दी हुई नथ थी, कगन थे और करधनी थी। सो, आज संदूकची में निकालकर—खटाई में मॉज-मूँजकर मुन्ना-पोछकर रखे हुए थे। मभली बहू से चंद्रहार ले आई थी, छोटी बहू से भुमके। गले में डालने की चाँदी की चकतियाँ बड़ी बहू खुद ही निकाल लाई थी।

रामेसरी ने एक-एक कर बिसेसरी को गहने पहनाए। लड़की को बार-बार प्यास लगती थी, उसका मन परेशान था। दिल जुरी तरह धड़क रहा था। आज सभी उसे एक अजीब नजर से देख रहे थे। अँधेरे घर में साँप ही साँप ! उसे बड़ा ही डर लग रहा था, अगले क्षणों में क्या होने वाला है...दूल्हे के बारे में सही बातें बिसेसरी से अच्छी तरह छिपा रखी गई थी। वह तो खैर बूलो की भाभी से सबेरे ही थोड़ा-कुछ बेचारी को मालूम हुआ था। चतुरा चौधरी के पीछे पिछले तीन दिनों से पंडित पड़ा था, रिश्त की बात पक्की-सी हो चुकी थी और कल रात को जो लोग सौराठ से लौट आए थे उनकी मेहरबानी से यह समाचार गाँव के वायुमंडल में तभी से मँडरा रहा था। पहला आदमी खंजन थी जिसके मुँह से बिसेसरी को यह बात मालूम हुई और तब बेचारी को जैसे साँप सूँघ गया ! घायल हिरनी सी दौड़कर वह बूलो के घर गई और भाभी की गोद में बेसुध गिर पड़ी। अपनी नौकरानी भेजकर भाभी ने फौरन दिगंबर और माँह को बुलवाया, बूलो मौजूद था ही। बिसेसरी उस गँवई “ब्रमपाटी” की अनियमित सदस्या थी, पिछले छः महीने से। वे एक दूसरे की दिक्कतों से पूर्ण परिचित थे। खेल-मनोरंजन, सोच-विचार, सुख-दुःख...कभी-कभी नाश्ता पानी भी—बहुत-सी बातों में वे परस्पर आभीय बन चुके थे, आज दुपहर तक माँह और दिगंबर भाभी के पास बैठे थे, यह तय करके ही उठे थे कि बिसेसरी का ब्याह उस बूढ़े से कदापि न होने देंगे। बिसेसरी गोकि पहले ही वहाँ से उठ आई थी

मगर मन उसका अच्छी तरह मान गया था कि मेरा गला ये लोग नहीं कटने देंगे...लेकिन यह तो दुपहर की बात हुई न ? पहर भर रात बीत गई है, दूल्हे का सर-सामान और उसके आदमी बाहर बैठके में आकर जम गये हैं। नाना स्वयं अपने हाथों 'कन्यादान' करेंगे, सो, नहा आये हैं और संध्याकालीन पूजा-पाठ से निवृत्त रहे हैं। कुलदेवता के समस्त मंगलगान आरम्भ हो चुका है, बड़ी-बूढ़ी औरतें और नई-नवेली बहू-बेटियाँ रस ले-लेकर गा रही हैं। नानी स्वयं पूड़ियाँ छानने बैठी है, माँ साधारण रसोई में। मुझे सजा-सँवारकर मौके के लिए तैयार कर लिया गया है—अब और मेरे सर्वनाश में क्या बाकी बचा है ? वह देखो, नाई हवन की लकड़ियाँ ला रहा है, कुम्हार हाथी*—पातिल-पुरहड़ और सकोरे वगैरह ले आया है। मभली मामी आँगन के बीचोबीच ब्याह के लिए जगह लीप रही है। छोटी मामी कनेर के पीले फूलों की माला गुँथ रही है। बड़ी मामी का सारा ध्यान अपने बच्चों को धड़िया-धोती, अंगा-टोपी और आँगो-घघरा पहनाने में लगा हुआ है और दुलहिन यहाँ भल्ल मार रही है ! हे भगवान, कैसे मैं यह जहर पियूँगी ?

रह-रहकर त्रिसेसरी के मन में यही तरंग उठती थी कि कुँ में जाकर कूद पड़े...बीच आँगन में खड़ी होकर चिल्ला पड़े—इसमें अच्छा यही होगा कि भगवती दुर्गा की पीड़ी पर मेरी बलि चढ़ा दो...

उमे भाभी, माहे, दिगम्बर और बूलो आदि याद आये—वे बैठे नहीं होंगे, कुछ न कुछ मेरे लिए वह जरूर करेंगे। थुप अँधेरे में आशा की एक भल्लक त्रिसेसरी को दिखाई पड़ी और कमर सीधी करके एकाएक वह खड़ी हो गई। गहनों के भंकार से घर का वह मौन टूट गया।

* शादी के वक्त मिट्टी का पक्का हाथी सामने रखा रहता है। पातिल वह हँडिया है जिसके अन्दर दिया जलाकर, ऊपर ढक्कन से आधा ढँका रहता है। पुरहड़ (पुरोघट)—मंगलकलश।

वह छोटी लड़की जो अभी तक चुपचाप बैठी थी, चट से उठकर आगे बढ़ी। उसने इधर-उधर देखा, वहाँ कोई नहीं था। सब आँगन या दूसरे घरों में कुछ न कुछ कर रही थीं। इस कोठरी में बिसेसरी को छोड़कर वह खुद ही थी।

मौका पाकर उसने बिसेसरी के हाथ में एक पुजों गोज* दी और चली गई।

इस घर में एक ढिबरी जल रही थी, लालटेन सभी बाहर जमगमा रहे थे।

बिसेसरी निकलकर बाहर बरामदे तक गई और भाँककर देखा, सब अपने-अपने काम में लगी थीं। फिर वह अन्दर आ गई। सन्दूक की आड़ में ले जाकर कोने के एक आले में ढिबरी रख दी, पुर्जी को खोलकर बाँचना शुरू किया।

“प्रिय बिसेसरी,

घबड़ाना नहीं। हमने तुमको जो वचन दिया है, उसे पूरी तरह हम निभाएँगे। तुम जरा भी मत घबड़ाओ। तुम्हारी मदद की अभी तो कोई जरूरत नहीं है, आगे भी जरूरत नहीं पड़ेगी—ऐसी आशा है। सब से बड़ी सहायता तुम हम लोगों की यही कर सकती हो कि अपने दिल को कड़ा किए रहना।—१३/६/५० दिगम्बर”

भरोसे की ये चंद पंक्तियाँ बिसेसरी को संकट-मोचन का अमोघ आश्वासन प्रतीत हुईं। एक, दो, तीन, चार जाने कै बार वह उन पंक्तियों को आदि से अन्त तक पढ़ गई, फिर भी संतोष नहीं हुआ। देवी-देवता का फूल अन्दर डालकर लोग बड़े जतन से जन्तर मढ़वाते हैं ताँबे का, चाँदी का, सोना का, अष्टधात का; वे उसे बाँह में, गले में, कमर में

* घोंप दी।

बाँधते हैं कि हमेशा शरीर से लगा रहे । लेकिन बिसेसरी को इतना भर से कहाँ तसल्ली होती ? उसका वश चलता तो अभी छाती चीरकर इस पुर्जी को वह अंतःकरण में सँभाल रहती !

पिछले आठ-दस घंटों में अपने इन बन्धुओं के मन की एक भी बात बिसेसरी तक नहीं पहुँची थी, पहुँचता रहा बस एक यही सु-समाचार कि रानी बनेगी बीसो—सोने के गहनों से लद जायेगी, हाथी पर चढ़ के गौरी को पूजेगी !

अपने अन्दर आज उसे सचमुच नया खून महसूस हुआ । एक प्रकार की नई चेतना से उसके अंग-अंग में फुर्ती दौड़ने लगी—तो वह अकेली नहीं है । दिगम्बर और माहे, भाभी और बूलो गाल ही नहीं बजाते थे सिरिफ, वे कुछ कर भी सकते हैं ।

मन हुआ कि एक-एक करके सब गहना उतार डाले और चुपके से भाग जाय । पिछवाड़े से दाईं तरफ माहे की भाँसों की बाड़ी है, आगे खेत शुरू होते हैं । काफी दूर तक गन्ने की खेती है...मगर इस तरह भागकर वह जायेगी कहाँ ?

बिसेसरी का दिमाग फिर चकराने लगा ।

भीत के सहारे वह धम्म से बैठी तो कागज का वही टुकड़ा टुड्डी से छू गया । वह अब तक उसके हाथ में ही था । पुर्जी के स्पर्शमात्र से बिसेसरी फिर सँभल गई ।

ढिबरी को नीचे किये बिना ही वह पुर्जी को फिर बाँचने लगी, मन ही मन...

अपने को उसने फटकारा—घबड़ाती क्यों है ? सोचने का सारा ठेका तूने ही ले रखा है क्या ?

तब उसे ध्यान आया कि पेंसिल से चार आखर घसीट कर भाभी को भेजवा देती ! लेकिन, अब वक्त भी कहाँ है ? और ले भी कौन जायगा आखिर !

कि इतने में एकाएक आँगन की हलचल कई गुनी बढ़ गई !

यह क्या हुआ ?

आ तो नहीं गया वह कसाई ?

हे भगवान !

सचमुच यही बात थी । घोड़े की हिनहिनाहट ने त्रिसेसरी के दिल की धड़कन को और बढ़ा दिया । वह न उठी, न हिली । बाईं हथेली पर ठुड्डी टेके, रुक-रुक कर चलती साँसों ने घबड़ाहट को पगे धकेलने की कड़ी कोशिश में वह लग गई ।

बाहर ब्रैटक में, कई तख्तपोशां पर कंचल और जाजिम बिछे थे । छोटी चौकी पर ऊन का खूबसूरत आसन बिछा था । पास ही बड़ा लोटा, पानी भरा ताँबे का घड़ा और पीतल की अढ़िया धरी थी ।

दूल्हा बाबू के पैर धुलवाए गये, उन्हें भली-भाँति पोछवाया गया । इस ड्यूटी पर बूढ़े छकौड़ी खवास तैनात थे ।

दूल्हा के बैठ चुकने पर घर वाले और गाँव वाले भी बैठ गये । सब चुप थे, एकटक दूल्हे के चेहरे की तरफ देख रहे थे ।

उमर उसकी साठ से कम की तो क्या होगी, दो-एक वर्षे अधिक ही होगा । चेहरा रोसीला था । कान छोट-छोट, आँखें बादामी । नाक न खड़ी, न पड़ी । हाँठ पतले । बाल पके हुए । मूँछे बारीकी से छँटी हुई, दाढ़ी साफ । गालों में गढ़े पड़े गये थे । सिल्क का कुर्ता, टसर की पगड़ी, रसमी चादर । सिकिया कोर की फस्ट क्लास धोती । हिना और केवड़े की तेज खुशबू से लोगों की नाक भर-भर उठती थी । गेहुआँ कपार पर गोल सेंदूर का गोल टीका पेट्रोमैक्स की तेज रोशनी में बड़ा ही भला लग रहा था ।

पंडित मय पाँचों पूत आगंतुक की अभ्यर्थना में हाजिर थे ।

बाकी लोगों में मुखिया जी थे, फतूरी ठाकुर थे, परमानंद पाठक थे । जयनारायण मल्लिक, मधुसूदन कंठ, श्रीनारायण प्रतिहस्त, गाँव के स्कूल

के चारों मास्टर, संस्कृत पाठशाला के जोतखी जी और बीसियों दूसरे लोग भी मौजूद थे ।

रात पहर-डेढ़ पहर बीत चुकी थी । दस क्या, एगारह का अमल होगा । उमस काफी थी । पंखी के अभाव में बड़े-सयाने अगोंछी भुला-भुलाकर हवा ले रहे थे, लड़के हाथ भुला-भुलाकर । पेट्रोमैक्स ने गर्मी की मात्रा को कई गुना बढ़ा दिया था । कीड़ों-फतिगो को भुलस-भुलस कर मरने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ था ।

चर्चा चली कि पाकिस्तान जोर मार रहा है, काश्मीर में फिर घमसान मचेगा... बात का छोर कांग्रेसी शासन से छू गया तो खांखा पंडित बीच ही में टप से बोले—अङ्गरेज बहादुर ही अच्छे ! इनसे तो हम भर पाये... बिना राजा के कहीं कोई राज चला है ?

छकौड़ी खवास बैठक से हटकर अँगनई में बैठा था । तमाकू खांट रहा था, नैनी मलने के लिए । वह बोला—अङ्गरेज लहू पीता था, ई लोग हड्डी चबाते हैं पंडित जी !

इस पर मुखिया जी कड़वाहट से भर गये, कहा—धन्य कांग्रेस सरकार कि हमारी-तुम्हारी इज्जत-आबरू बची हुई है ! दूसरे की हुकूमत होती तो आजकल केला-थंभ की छाल इसी भाव से खरीदते लोग और सो भी कहाँ मिलती ?

फरूरी ठाकुर ठीक इसी वक्त कपड़ा कन्ट्रोल की शिकायत करने लगा—जमाहिर लाल का भला इसमें क्या कसूर है ! अफसर साले घूस खाते हैं, दुकनदार उनको चाँदी सुँघा देता है बस...

दूल्हा भला क्यों पीछे रहने लगा ? वह बोला—सरकार मलेच्छों के प्रभाव में है, हम हिन्दू अगर आपसी भेद-भाव भूलकर एक हो जायें तो कल ही रामराज स्थापित हो जाय ।

“दैहिक दैविक भौतिक तापा
रामराज काहुहि नहि व्यापा ।”

बाबा तुलसीदास की बात एकता और धर्म के बिना कैसे अमल में आवेगी ?

कि बूँदाबाँदी शुरू हुई ।

बादल उमड़-धुमड़कर तो नहीं आये थे । दो-चार खंडमेघ आकाश में मटरगश्ती कर रहे थे, अब ठीक माथे पर पहुँचकर अलसा गये तो ढीले पड़ने लगे । बूँदों की पटापट सुनकर बैठक में बैठे हुआओं के कान गुदगुदा उठे, देह में हल्की सिहरन हुई ।

छकौड़ी ने जल्दी में सुरती ठोकते हुए कहा—देखना हो इन्नर महाराज, सुभ काज में भड्ठी*मत डालना !

फिर उसे कुछ याद आया—

—मालिक का घोड़ा कहाँ है पंडितजी ?

—अरे हाँ, घोड़ा कहाँ है बच्चन ?

पेट्रोमैक्स की लाइट जहाँ सबसे अधिक पड़ रही थी वहीं बैठकर बच्चन नई जनेऊ में गाँठ दे रहा था, सामने चँगेरी में तीन-चार जोड़े जनेऊ के पड़े थे—पीले रंग के । और तानियों में गाँठ पड़ चुकी थी, यही एक तानी गँठियाने को रह गई थी । एक तानी में इतना लम्बा धागा रहता है कि तीन फेरों की एक जनेऊ होती है, आम तौर पर लोग छः फेरों की दो जनेऊ धारण किये रहते हैं कि एक-आध धागा कहीं टूट-टाट गया तो भी तन-मन की शुद्धि बनी रहेगी । सो, आज बियाह-संस्कार के समय कई जनेऊओं की जरूरत थी । बच्चन जल्दी-जल्दी जनेऊ गठिया रहे थे । गाँठ डालकर जनेऊ को उन्होंने समेटा-गोलियाया और बोले—घोड़ा तो पोखर पर है, पीपल की जड़ से बँधा है । दो टोकरे हरी घास डाल दी गई थी उसके आगे, खा-वाकर आराम कर रहा होगा बैठ के !

* विघ्न, रुकावट ।

पंडित ने यह सुना तो उनका मन थिर हुआ, हल्की-सी हुँकारी भर कर रह गये !

तब तक बूँदा-बाँदी खतम हो चुकी थी ।

छकउड़ी ने तैयार सुतीं वाला दाहिना हाथ सलीके से आगे बढ़ाकर दूल्हे के भांजा से कहा—लिया जाय हजूर !

उसने डबल जूम तमाकू छकउड़ी की तलहथी पर से उठाकर निचले होंठ और दाँतों के दर्यानी गढ़े के हवाले किया और बैठने की मुद्रा बदल ली । पत्थी मारकर बैठा था सो अब चुक्रीमाली* हो गया ।

खबास ने फतूरी ठाकुर को भी सुतीं दी, बल्कि हाथ बढ़ा के लेने कहा ।

रही-सही लैनी उसने आप फाँक ली तो बरामदे से नीचे उतर कर अँगनई में जीमड़ के अधजीबू खूँटे से पीठ टिकाकर आ बैठा...

कटी-टूटी बातें पंखहीन तितलियों-सी बैठके में अब भी रेंग-रेंगकर चल ही रही थीं ।

छोटी जात का एक छोकड़ा दूल्हे के पास खड़ा था और किनारीदार बड़ा पंखा भल रहा था, पुराना और पीला पड़ गया हुआ ताड़ के पोट्टे का पंखा—लंबी-मोटी डंठल वाला !

बीच ही में मुखिया ने मँगवा लिया था, दादे के अमल का अपना पंखा । गाँव की इज्जत को ऊँची बनाये रखने में मुखिया अपना-पराया सब भूल जाता था !

कितना बड़ा मातबर आदमी आज नौगछिया आया था !

फिर भी जाने क्या बात थी कि दूल्हा रह-रहकर कछूमछा उठता था । वह इधर-उधर नजर घुमाकर फिर-फिर अपनी बाईं कलाई उठाता था ।

*मुड़े घुटनों को पीठ के सहारे अगौछी से तनिक ढीला-ढीला सा बाँध लेते हैं, इससे बिना उठेंगे भी अपने आप एक सहारा हो जाता है ।

कै बज गये ?

पौने बारह !

देर क्यों हो रही है ?

कुछ नहीं, दूसरा मुहूर्त पौने एक बजे पड़ता है जो कि साढ़े दसवाले से कहीं तगड़ा और महाशुभ है ।

‘अच्छा, तो यह बात है !

मगर बड़ा ही विलंब होगा ।

हटाओ भी, मगलमय परिणामों के लिए हमारे पर्वज कठोर से कठोर-तर साधना कर गये हैं और हम रात भर जाग भी नहीं सकते ? छिः !

दूल्हे की कमर सीधी हो गई, वह तनकर बैठे ।

सात

त्रिसेसरी को लेकर सधवा औरतें गाँव के बाहर ग्राम और महुआ के पेड़ पुजवाने गई हुई थीं ।

बाहर बैठक में तो रौनक थी लेकिन आँगन मानो खाली था । रामेसरी और मभल्ली बहू, बस दो ही जने रह गये थे घर में । बाकी सब—बच्चे तक—पेड़ पूजन के निमित्त जो शोभायात्रा निकली थी अपने आँगन में, उसी में शामिल होकर बाहर निकल गये थे । टोल* की अपनी पुरानी कुतिया तक उस जुलूस में साथ गई थी...वह बिल्कुल स्वस्थ रही हो ऐसी बात नहीं, तो भी बेचारी साथ गई थी—बारह साल के पिछले जीवन में उसका त्रिसेसरी से अटूट सखीभाव चला आ रहा था, आज ही भला वह क्यों पीछे रह जाती ?

रामेसरी और मभल्ली बहू अपने कामों में मशगूल थीं ।

* मुहल्ला ।

बैठक के कोने पर एक छोटा दरवाजा था, वह अन्दर घर की ओर खुलता था। यों तो समूचा ही बैठका भीतरी मकान का बाहरी हिस्सा था, लेकिन था वह बिलकुल स्वतन्त्र। बैठके के दोनों छोर क्या थे, कमरे थे दो छोटे-छोटे। उन्हीं में से एक कोठरी का लगाव अन्दर हवेली से था।

रामेसरी भाँक-भाँककर दूल्हे का चेहरा-मोहरा देख चुकी थी। वह बहुत उदास थी। शकल-सूरत तो आदमी की कोई उतनी बुरी नहा थी, हाँ पकी उमर और तीन-चौथाई सफेद बाल बेचारे को त्रिंसेसरी के अयोग्य घोषित कर रहे थे।

अभी वह वर-वधू के लिए तस्मै* तैयार कर रही थी।

साधारण रसोई से अलग, मिट्टी के ताजे चूल्हे पर पीतल का मामूली तसला चढ़ा था। दो चैलियाँ, फटे-पुराने बाँस की फट्टी। मजे की आँच थी। खौलते दूध में चावल उबल रहे थे।

पास ही रामेसरी बैठी थी। आधी पलथी, दूसरा घुटना उठा हुआ। दाहिने हाथ में पीतल की कलछी, बाईं हथेली पर टुड्डी टिकी थी।

सामने की आँच की ओर एकटक निगाह।

—किस गुनधुन में पड़ी हो दइयनि ?

मभली बहू के स्वर ने रामेसरी की अन्यमनस्कता से एक टक्कर ली, फल कुछ नहीं निकला। वह सूनेपन में छितरा गया।

मभली बहू नजदीक आ गई।

ननद की आँखों में भाँककर देखा।

अब भी रामेसरी खोई ही रही, मन की समूची शक्ति जाने किस भौंभ में उलझ गई थी कहाँ जाकर ! शरीर मात्र वहाँ पड़ा था।

तसले का गला खौलते दूध के फेन से लबालब भर आया। मभली

* खीर।

बहू रामेसरी के हाथ से कलछी लेकर उस ओर लपकी और खीर घोटने लगी ।

मभल्ली बहू भी दूल्हा देखकर भँवा गई थी । यह उसकी कल्पना से परे की बात थी कि बीसो जैसी सोनछड़ी को बूढ़े पीपल की डाल से लटका दिया जायगा । वह स्वयं एक गरीब ब्राह्मण की बेटी थी । उसका बाप ईमानदार और निर्लोभी पंडित था । पूर्वजों की उपाजित जमीन थी, पाँच बीघा । दो हट्टे-कट्टे बेटे थे । लग-भिड़कर वे धरती माता की उपासना करते थे । लड़कियाँ एक नहीं, तीन थीं । मुदा उनमें से एक की भी शादी से उस बाभन ने रुपैया नहीं बनाया । अपनी ही तरह के मामूली गृहस्थी के घर उसे पसन्द आये ।

मभल्ली बहू की आँखें छलछला आई, गला भारी हो गया—
दइयनि !

उसने रामेसरी के कंधे पकड़ लिये, उन्हें हल्का भकौरा दिया—एक बार, दो बार और तीसरी दफे भी ।

रामेसरी की चेतना लौट आई । वह सँभलकर बैठी ।

—हो गया फुलकुम्मरि ?

—हाँ, डाला सज गया ।

—देखो न, खीर अब भी नहीं हुआ है !

—वाह ! हो तो गया, मैंने देख लिया है ।

—सच ?

—तो क्या भूठ ?

—उँ !

—तुम चलो दइयनि, आँगन में चलकर बैठो । मैं आँच हटाकर अभी आई ।

रामेसरी उठी और जाकर बीच आँगन में खड़ी हुई ।

—अरे, बूँदें पड़ी थीं !

अधिक नहीं, दस ही बाँच बूँदें पड़ी हैं यह जानकर रामेसरी को संतोख हुआ ।

लिपे-पुते आँगन में सफेद अइपन* चक-चक कर रहा था, गाड़ी का चाका जैसी गोल और बड़ी परिधि में कुई के फूलों की माला आँकी गई थी । मध्य में षोडश-दल कमल अंकित था ।

अइपन पर ध्यान जाते ही रामेसरी को अपनी माँ के बारे में अभिमान महसूस हुआ—मेरी मइया कैसी गुनमंती है ! लोढ़ा-सिल और चक्की-ऊखल तो सब चला लेती हैं, यह विद्या सब के बस की नहीं ।

सारी तैयारी पूरी हो चुकी है—रामेसरी अपने आप बिदबिदाई । दूल्हे की शकल-सूरत न याद आ जाय, इसी से वह कुछ न कुछ बुदबुदाती रही । उसका मन इस अप्रिय स्मृति से बेहद कतरा रहा था ।

—जो होना है, जल्दी हो जाय !

—तो अब देर ही क्या है ?

—गे मइयो, अभी क्या हुआ है !

—नाहक ही मत घबड़ा तू !

—कहाँ घबड़ाती हूँ...

कमर सीधी करके खड़ी हो गई रामेसरी, जैसे ट्रेनिंग के समय रँग-रूट को हवलदार ने कह दिया हो—हो शि या र !

घर से मझली बहू निकल आई ।

पास आकर ननद से उसने कहा—दइयनि, और सब तो ठीक है, मेघों का बिसवास नहीं ।

—नहीं, अभी बरखा-तरखा नहीं होगी ।

—और अभी-अभी जो बूँदें पड़ गईं सो ?

*भिगोये हुए चावल को पीसकर और गाढ़ा घोलकर अँगुलियों से अंकित मांगलिक चित्रण, आलिपन ।

—बस, इतना भर बरसना था ।

आकाश की ओर दाहिना हाथ उठा कर रामेसरी ने कहा—दो-तीन टुकड़े बादलों के वह देखो पच्छिम तरफ भाग चुके हैं । पछिया हवा होती तो तुम्हारा डर ठीक था, यह तो पुरवइया सिंहक रही है...

—भगवान करें !

इसी बीच बाहर, बैठके की ओर से दुतर्फा आवाज आने लगी । मगर सधारन नहीं था, उसमें भगड़ की धसक थी । ऐसी कि मेंड़ के दो ओर खड़े होकर दो खेतिहर आधा बित्ता जमीन के लिये तकरार कर रह हों आपस में ।

स्वर की तिखाई एकाएक बढ़ गई । एक आवाज थी खांखा पंडित की, दूसरी माह की ।

दूसरी आवाज में तिखाई उतनी नहीं थी जितनी कि दृढ़ता...

—फुलकुम्मरि, तुम इधर देखती रहो । मैं तनिक उधर देखूँ ।

रामेसरी दौड़कर पछुरिया घर के ओसारे में आई और दाहिनी तरफ से होकर उस कोठरी में घुसी जिसका अगला दरवाजा बैठके की ओर खुला था । उसकी काढ़-करेज केले के नये पत्ते की तरह कांपने लगी थी... क्या होने वाला है !

रामेसरी छाती पर दोनों हाथ रख कर किवाड़ी की आड़ में खड़ा हो गई । भौंक कर देखने का साहस उसमें बाकी नहीं था । खतरे की प्रतीक्षा में निश्चेष्ट खड़ी रही वह—

बाप चूल्हा फूँकते-फूँकते मर गया और तू हमारे घर में आग लगाने आया है ?—माहे की ओर हाथ बढ़ा-बढ़ा कर खांखा पंडित चिल्ला रहे थे । वह चुप था, निगाहें मगर दूल्हे पर गड़ी हुई थीं ।

जाता है कि नहीं यहाँ से सूअर कहीं का !—पंडित फिर चिकरे* ।

*चीत्कार किया, चिल्लाये ।

माहे ने मजबूती से कहा—मैं जाने के लिए नहीं आया हूँ पंडित बाबा, आपसे तो मैंने कुछ कहा भी नहीं है...

—आग तो लगा दी है, कहेगा क्या !

—मुझे आप से कुछ मतलब नहीं है...

माहे ने दूल्हे के भांजे को संबोधित किया—आप तो, सुना है, पढ़े-लिखे हैं। क्यों न अपने मामा को समझाते हैं ? साठ साल की उमर, पाँच-पाँच जवान बेटों के बाप...छी-छी-छी-छी ?

खोंखा पंडित ने यह सुनते ही माहे पर अपनी एक खड़ाऊँ फेंकी, वह वार को बचा गया। जाकर जरा अलग खड़ा हुआ और मुसकराता रहा।

बच्चन अपने बाप को सँभालने में लगा था। दूसरे बेटे किर्तव्य-विमूढ़ खड़े थे। पंडित दाँत पीस-पीस कर मुँह टेढ़ा कर-करके अनाप-सनाप अपना बके जा रहे थे; दहिने हाथ की मुष्टिमुद्रा बना-बना कर और बाया हाथ से उसकी हथड़ पकड़-पकड़ के वह माहे को कह रहे थे—केला लेगा, केला ? भोस* और बाइनर ? अपनी माँ के...

उधर फतूरी और मुखिया दूल्हे से बातें कर रहे थे। उसका भगिना† भी उन्हीं बातों में अपना कान-मुँह भिड़ाये हुए था।

पंडित का चौथा लड़का—दुनाई—इस साल मैट्रिक में था। उसकी आयु विसेसरी से डेढ़ साल बड़ी थी। उसका भी मन इस प्रकार के दूल्हे के पक्ष में नहीं था।

माहे का रुख देख कर दुनाई को यह समझते देर नहीं लगी कि गाँव भर के नौजवान इस ब्याह के खिलाफ हैं, यह विरोध-प्रदर्शन न तो अकेले माहेस्वर की ओर से है और न असंगठित ही है।

दुनाई स्वयं भी समझदार था और बहुत-सी बातों में वह नवयुवकों

*मोटे-मोटे केलों की दो जातियाँ। †भांजा।

का साथ देता । पिता की संकीर्ण मनोवृत्ति का शिकार वह खुद भी कई बार हो चुका था, बहनों की दुर्दशा उसे रह-रह कर कोंचती थी ।

इस समय भाइयों को चुप पाकर दुनाई ने समझ लिया कि सिवाय बाबू (पिता) के यह दूल्हा किसी को पसन्द नहीं है; माँ और बहन डर के मारे कभी कुछ बोलती नहीं, जो मन में आता है बाबूजी वही करते हैं... देखो न, माहे बेचारा नाहक इनकी गालियाँ सुन रहा है, क्या बुरा कहा है उसने ? दूल्हा का क्या कमी है, एक नहीं एकइस मिलेगा...

वह चट से माहे के पास गया ।

दोनों अलग जाकर सिंदुआर की भाड़ियों के आड़ में फुसफुसाने लगे ।

—अब क्या होगा ?

—वापस जायगा बुड्ढा, और क्या होगा ?

—लोग क्या कहेंगे ?

—और, ब्याह हो जाने पर दुनिया क्या कहेगी ?

.....

—एक काम करोगे ?

—क्या ?

—अभी बिसेसरी गई है आम-महुआ के पेड़ पूजने, लौट आवे तो कहना : खूब पानी पीले और मुँह में उँगली डाल-डाल के कै करे...

फिर ?

—फिर तुम बैठके में आकर सब के सामने यह खबर सुनाओ कि बिसेसरी की तबियत एकाएक खराब हो गई है, उसे तीन कै और दो दस्त हुए हैं...

—अच्छा ।

अब दुनाई ने माहे के बाएँ कंधे पर अपना दहिना हाथ धर दिया और पूछा—तुम अब क्या करोगे ?

देख लेना—अपने कंधे पर मे उसका हाथ हटा कर माहे बोला ।
 दुनाई इधर आया, माहे उधर गया—पोखर की तरफ ।

आठ

रात अधिक हो गई थी ।

बहुतेरे दूल्हा के पास तनिक देर बैठकर चले गये थे कि सेंथ में सेंदुर पड़ेगी और फेरे पड़ेंगे तब आयेगे और दूल्हा-दुलहिन को आशीर्वाद दे जाएँगे ।

फतूरी, मुखिया और संस्कृत पाठशाला के जोतखीजी* और छकउड़ी खवास—बस, गाँव का और कोई नहीं था । जो थे सो सब घरवैया ही थे, पंडित और उनके बेटे । बाकी, दूल्हा बनने का मसूरा बाँधकर जो आये हुए थे वह बाबू श्री चतुरा चौधरी तो विराजमान थे ही, भगिना भी था उनका । अलग, फटी दरी पर अंधेड़ उमर का टहलुआ† था बैठा हुआ । उसकी आँखें अपनी नींद-लदी पलकों में जूझ रही थीं ।

ऐसे ही समय माहेश्वर आकर महफिल में मानो बम फोड़ गया था, धुआँ से सबका दिमाग भारी और बेकाम हुआ जा रहा था । घायल दो जने हुए थे ।

भावी दूल्हा बुरी तरह घायल हुआ !

खोखा पंडित का हाल तो और भी खराब था ।

भारी-भारी रुंधी-रूंधी बातें होती रहीं ।

मुखिया बोला—अपने गाँव के छोकड़ों का मिजाज सनक गया है, इनका इलाज होना चाहिये फतूरी काका !

मुँह की खैनी थुकर‡ के फतूरी ने कहा—चारो चरन कलजुग इसी नौगछिया बस्ती पर छा गया है...

*जोतसी, ज्योतिषाचार्य । †सेवक, नौकर । ‡थू: करके फेंक कर ।

मगर जोतखी जी ने जो बात कही इस पर, उससे सवाल का रुख ही पलट गया ।

गेहुँआ खाल से मढ़ा हाड़ों का कमजोर ढाँचा । फाँक सी आँखें, नुकीली नाक । बड़े-बड़े कान । पतली मँछ, चिकने गाल । पहनावे में मामूली धोती, कंधे पर गमछा चारखाना ।

भीत से पीठ टिकाकर बैठे थे वह ।

उन्होंने कहा—अग्रहन में ब्याह के अच्छे दिन पड़ते हैं, लगन के वैसे बढ़िया योग इधर कई वर्षों में नहीं आये...

फतूरी ठाकुर छूटते ही बोले—अग्रहन ! आ हा ! मेरा ब्याह अग्रहन में ही हुआ था, हम दोनों कभी बीमार नहीं पड़े ।

पंडित को धर-पकड़ के लड़के अन्दर ले जा चुके थे । उधर से फिर कौन क्या बोलता ! दूल्हे के भांजे को बातचीत के इस नये रुख में आज का लगन ढालने की गंध आई तो चट में उसने कहा—नहीं, अभी वाला लगन भी बेजोड़ है ।

—होगा !

जोतखी नकिया कर बोले ।

फतूरी का मन कर रहा था कि प्रधान पाहुने की चुप्पी टूटे । लेकिन वह तो एकदम हतप्रभ और मौन बैठ गया, पाल्थी पर केहुनी थी और बैँधी मुट्ठी पर ठुड्डी टिकी हुई थी । दृष्टि सामने जीमड़ के खूँटे पर ।

कुछ देर तक फिर वातावरण गंभीर हो गया । कोई कुछ नहीं बोल रहा था । बीच-बीच में गमछे से पीठ भाँटने की आवाज । पेट्रोमैक्स की लाइट के कारण इधर-उधर उड़ने वाले कीड़े पीठ पर बैठते थे और गमछे की चोट खाकर सद्गति प्राप्त करते थे ।

दूल्हे के लिए जो खास पंखा आया था, वह भी अब आराम कर रहा था । टट्टी फिरने जाने का बहाना बनाकर पंखा भलने वाला छोकरा कब का जा चुका था ।

इस तरह महफिल पर मुदनी छा रही थी ।

वह तो मुखिया जी मुस्तैद थे नहीं तो हवा के अभाव में पेट्रोमैक्स भी अपना काम तमाम कर चुका होता !

छकउड़ी अँगनई में, जामड़ के उसी खूँटे से पीठ टिकाये भूपकियाँ ले रहा था ।

—इधर आइए मुखिया काका !

अन्दर से निकलकर दुनाई ने जोर से पुकारा तो मुखिया चिहुँक उठा—क्या बात है हो ?

—बिसेसरी के दो दस्त हुए हैं और तीन बार कै !

—अब क्या हाल है ?

—हाल क्या पृछते हैं, दाँती* लग गई है !

—जाओ, हमारे घर में पुदीना का अरक और अमरितधारा लेते आओ ।

दुनाई मुखिया के मकान की ओर गया ।

फतूरी और मुखिया धड़फड़ाकर अन्दर घुसे ।

दूल्हा का धीरज अब जवाब दे गया । वह तख्तपोश पर से उठा । नीचे अँगनाई में आकर चहलकदमी करने लगा । उसे नौ सौ रुपये डूबने की उतनी पर्वाह नहीं थी जितनी कि बे-आब्रू होकर वापस जाने की । थोड़ी देर वह अकेले टहलता रहा, फिर भगिने को बुला लिया ।

दोनों फुस-फुस करते हुए चहलकदमी करते रहे ।

छकउड़ी भी भीतर चला गया था, बिसेसरी को देखने ।

चतुरा चौधरी का नौकर अपना उसी तरह ऊँघता रहा । मालिक किस मुसीबत में यहाँ आ के फँसे हैं, इसका ज्ञान उस अलबौक को था ? नहीं था ।

* मूर्छा, बेहोशी जिसमें दाँत पर दाँत बैठ जाते हैं ।

नहीं था क्योंकि चौधरी का अपना आदमी किसी फौजदारी मामले का हाजती कैदी था आजकल, लहेरियासराय जेल में बन्द । जरूरत थी तो मालिक इसी मतसुन्न* को पकड़ लाये थे । तीन बार कहोगे तो बात इसके माथे में घुसेगी । डेढ़-डेढ़ सेर चावल का भात दोनों साँभ† ठूँसेगा, कुंभ-करन की तरह सोएगा...लाद-बोभ दो तो पक्का ढाई मन बाँभा ढोएगा, चार लात लगाओगे तो पीठ भाड़कर और दाँत-मुँह चियार कर चला जाएगा; फिर बुलाओगे तो बिना चाँ-चपड़ के वापस आएगा !

नाम क्या है ?

बड़ा अच्छा नाम है, दहलेलवा‡ !

इससे बढ़िया नाम उसका और होगा ही क्या ?

मालिक का कंठ सूख रहा था ।

तीन बार आवाज देने पर आदमी बोला—आँ ?

—प्यास लगी है !

—आँए !

—पानी रे बैल, पानी चाहिये !

—औं, पाइन मालिक ?

—मर साले !

आखिर दहलेलवा उठा और पानी लाकर अपने मालिक को उसने ठंढा किया ।

कहने पर भगिना बाबू को भी वह पानी दे आया, अपनी ऊह × होती तो पूछ भी लिया होता !

पानी पीकर मामा-भगिना दोनों फिर बैठने को हुए...

ठहरो, लवुशंका कर आऊँ—कान में जनेऊ लपेट कर मामा बोले ।

* मतिशून्य, बुद्धिहीन । † जून । ‡ महाबुद्ध । × समझ ।

भगिना बाबू के लिये मामा का सक्रिय समर्थन मानो आवश्यक था, कान पर जनेऊ चढ़ाते हुए बोले—मैं भी मामा !

दोनों पेशाब कर आये पानी लेकर ।

तरलपोश पर बैठते हुए, मामा ने फुसफुसी आवाज में कहा—देखा कुछ ?

क्या ?—विस्मय से आँखें फैल गईं भांजे की ।

—अरे, उधर पीपल के तले पाँच-छः आदमी खड़े थे ।

—यही लोग होंगे ?

—तो, और कौन ?

दुर्गा ! दुर्गा ! काली !! काली !

भाजा पड़िन था, सीधा-साधा संस्कृत पंडित । उसका हृदय एक अज्ञात आशंका से कपित हो उठा । वह सोचने लगा...मामाजी के माथे पर ब्याह का यह कौन-सा भूत सवार है, यह इनको चौपट करेगा एक न एक दिन ! फिर उसे याद आई अपनी दिवंगत मामियाँ, एक-एक कर के याद आई । ममेरे याद आये, अपने पिता के प्रति उन लड़कों की जो कुढ़न थी सो याद आई...अपने ननिहाल के बहुतेरे दृश्य उसकी आँखों के सामने नाचने लगे । किस चक्रव्यूह में आज मामा फँस गये हैं !...यह सोचते ही बेचारे का चेहरा भारी हो उठा । उसे लच्छून अच्छे नहीं नजर आ रहे थे । यह विश्वास उसका संशय के भँवर में ऊब-डूब कर रहा था कि सकुशल यहाँ से लौटेंगे और घर पहुँचेंगे ।

बाबू चतुरानन चौधरी भी गुमसुम थे । इस तरह की पशोपेशी में वह भी कभी कहाँ पड़े थे ? पहला ब्याह तो खैर सत्रह साल की ही आयु में हुआ था, मुला* बाकी तीनों शादियाँ चालीस के ऊपर की थीं उन्होंने ।

* मुदा, लेकिन ।

क्या मजाल, कहीं किसी ने चूँ तक किया हो ! और, आज क्या इस छोटी सी बस्ती के ये मामूली छोकरे शेर की मँछें नाँच डालेंगे ?

खानदानी शान-शौकत की याद आते ही मालिक की रीढ़ तन गई, चेहरे पर तेज छा गया और आँखों की चमक चौथुनी हो गई। मन ऐसा ताजा हो उठा कि पान के चार स्पेशल बीड़े एक ही बार मुँह में डाल लेने की इच्छा होने लगी ! लेकिन अब तो वह 'दूल्हे के रूप में' छिंक चुके थे, जब तक ब्याह नहीं हो लेगा तब तक सिवाय पानी के और कोई भी वस्तु मुँह में नहीं डालने देंगे लोग !

किसका मजाल है कि अब इस ब्याह को रोके ?

छोकरे ऐसी-वैसी हिमाकत करेगे, चाबुक से एक-एक की पीठ फोड़ दूँगा, हाँ !

मैं कुछड़े के खेत का मूली-बैंगन नहीं हूँ, मानिकपट्टी-मढ़िया के चौधरी-खानदान का पट्टीदार हूँ !

शेर-शेर हैं, गीदड़-गीदड़ ही रहेंगे...

.....दूल्हे ने दिमागी मैदान में स्वाभिमान का घोड़ा छोड़ दिया था, टापो की कल्पित आवाज से मन-प्राण उसके भर-भर उठे थे ।

घटकराज ने आते ही भंग छानी थी, मामूली कुछ खाकर जलपान किया था और बैठके की दूसरी छोर वाली कोठरी में खिड़की के सामने चारपाई पर तनकर सो गये थे। अभी तक उनकी योगनिद्रा पूर्ण नहीं हुई थी। कड़ी हिदायत थी कि उन्हें कोई उठाए, नहीं। हाँ, सिंदूरदान के पश्चात् उन्हें अवश्य ही उठा दिया जाय—वर-वधू के मस्तक पर दूब और अञ्जत डालकर आशीष देंगे, अपने ही घर का तो काम है यह !

बीच में इतना बड़ा कुकांड मच जाने पर भी घटकराज की नींद नहीं टूटी थी, अब भी ऋषभ-स्वर में वह अपनी नाक बजाये जा रहे थे ठर्र ठर्र ठर्र ठर्र... ठो... ठो... ठर्र ठर्र ठर्र ठर्र... बड़ी फुट और लयबद्ध ध्वनि

थी, ऐसी कि सुनने पर कान तिरपित हो उठते और हृदय का अंतरा-कोना गुदगुदा जाता !

घटकराज की इस सुख-समाधि पर दूल्हे का भांजा मन ही मन ईर्ष्यालु हो रहा था, उसे पिछली रात भी अच्छी नींद नहीं आई थी ।

ढहलेलवा बैठके की छोर पर खँभेली से अपनी पीठ टिकाये नींद के भूकोरे लेने लग गया था, फिर निचले होठ का मध्यप्रदेश तार-तार लार टपका रहा था उसका । जाँघ पर की धोती भींग रही थी ।

हवा की कमी से पेट्रोमैक्स की रोशनी मद्धिम पड़ती गई । अन्त में लाइट बिलकुल कम हो जाने पर प्रकाश का वह यंत्र फप्-फप् करने लगा !

फिर भी किसी का ध्यान उस ओर नहीं आकृष्ट हुआ !

रोशनी बिलकुल ही कम हो गई । लगा कि आखिरी हिचकी लेकर पेट्रीमैक्स अब अपनी इहलीला का संवरण कर लेगा ।

इतने में चट् से दो युवक आये, एक नीचे ही खड़ा रहा और दूसरा मिट्टी की दो सीढ़ियाँ टपकर बैठके में आ धमका ।

उसने फुर्ती से पेट्रीमैक्स में हवा भरनी शुरू की । मेंटल एकबारगी भभक उठा, फिर धुप्प ! और फिर भकाभक लाइट से समूचा दालान जगमगा उठा...

अब वह युवक नीचे आ गया अँगनई में ।

दूल्हा और उसका भगिना—दोनों सँभलकर उन अपरिचित चेहरों की ओर घूरने लगे ।

भगिना ने चतुराई की, बोला—आइए, नीचे कब तक खड़े रहेंगे आप लोग ?

आइए न !—दूल्हे ने शंकित स्वर में भांजे की बात का अनुमोदन किया ।

दोनों चुपचाप आकर फर्श पर बैठ गये ।

पूछने पर साँवली सूत और फैली-फैली आँखों वाले युवक ने कहा—
मेरा नाम है दिगंबर मल्लिक और इनका बलभद्र मिश्र । मैं घर का काम-
काज करता हूँ, यह नाइन्थ क्लास के विद्यार्थी हैं...

थोड़ी देर तक दोनों ओर चुप्पी ।

इसी बीच में पुदीना का अर्क और अमृतधारा लेकर दुनाई लौटा,
उसके पीछे माहे था ।

दुनाई अंदर चला गया, माहे आकर मल्लिक के पास बैठा ।

मल्लिक गौर से दूल्हे के मुँह की ओर देख रहा था इतनी देर तक ।
अब गंभीर स्वर में उसने कहा—बाबू साहेब, हम आप से फिर प्रार्थना
करने आए हैं । ब्याह का यह आग्रह आप छोड़ दें...

—ऐं क्या कहा !

बुढ़्दा बमक उठा, पागल और घबहा कुत्ते की तरह वह भौंकने
लगा—तुम लोग गुंडई पर उतर आये हो ! सारी कात्रिलियत घुसाड़ दूँगा ।
देखो तो भला, सावन जनमा गीदड़ और भादो आई बाढ़ और गिदड़वा
चिल्लाया बाप रे ! ऐसी बाढ़ कभी न देखी । बच्चू, अभी तो कुल जमा
चार रोज के होवे किये हो और नाभी की नार तक नहीं कटी है अभी !
अभिए चले हमें सबक सिखाने ? चार अच्छर पढ़ लिये हो तो क्या बूढ़-
पुरनिया लोगों की गजी चाँद पर चप्पल मारोगे ?...

गुस्सा के मारे कपार की नसे उभर आई थीं उसके तो ! आँखों के
कोए लाल-लाल डोरों से मुख हो चले थे, मुँह से अवरक का चूरन उड़
रहा था ! नाक की नोंक पर पसीने की बूंदियाँ हीरे की कनियों की मात दे
रही थीं । बारी-बारी से हाथ फड़क और सिमट रहे थे !

हल्ला-गुल्ला सुन कर खोंखा पंडित निकले, हाथ में मोटी लट्ठ थी ।

माहेश्वर उनका निशाना था ।

पंडित ने भरपूर वार की थी, इस दफे भी अपने माथे को उसने बचा

लिया मगर कमर में काफी चोट आई। वह लट्ट की छोर पकड़ कर वहीं बैठ रहा।

बलभद्र (बूलों) पंडित को धकेल कर अंदर दे आया और इधर से सांकल चढ़ा दी उसने।

आप यां नहीं मानेंगे !—दिगंबर ने मुँह में दो उँगलियाँ डाल कर जोर की सीटी बजाई।

सीटी बजते ही पाँच-छः जवान सिंदुआर की भाड़ियों की आड़ में से परगट हुए, सब के अपनी-अपनी लाठी थी। पीछे से एक आदमी दूल्हे का घोड़ा लेकर आया।

—लीजिए, यह आप की सवारी आई, आप फौरन चल दीजिए।

—वाकी सामान कल चला जायगा।

—फिर इस बस्ती में आप कभी मत आइएगा।

—पाँच लड़कों का आप, साठ वर्ष की उमर और दूल्हे की यह साज-सिंघार ! छी-छी-छी !!

—डूब मरने को पानी क्या अपने गाँव में नहीं मिला जो इतनी दूर आये ?

—सूरत-सकल तो देखो !

—कहाँ का छुछूँदर यह हमारी बस्ती में आ गया !

आदर-सम्मान की यह तैयारी देखकर चतुरा चौधरी की सारी हेकड़ी भूल गई। इस समय उसे फतूरी और मुखिया का अभाव खटका।

फतूरी ठाकुर और मुखिया जी रंग में भंग देख कर किसी बहाने खिसक चुके थे, जोतखी जी बीच में ही उठ कर चल दिये थे जब कि मालिक और भगिना बाबू पानी पी-पी कर आप ही अपना दिमाग चाट रहे थे।

पंडित को अंदर दो बेटों ने पकड़ रक्खा। बच्चन और दुनाई आँगन के सदर रास्ते में बाहर आये और पूरी पलटन को मुस्तैद पाकर बेहद घबड़ाये।

मोटी आवाज वाले दूल्हे की गर्जना सुन कर टोले-मुहल्ले के लोग जग गये थे। अपने-अपने घर से उच्चक-उच्चक कर सभी पेट्रोमैक्स के जगमगाते प्रकाश में हो रहे उस नाटक का आस्वाद ले रहे थे, संशय और कौतुक का मिश्रित भाव सब के चेहरों पर छाया हुआ था।

अंदर, रूम में कैद पंडित ताबड़तोड़ गालियाँ बके जा रहा था।

बच्चन और दुनाई को सामने पाकर दूल्हा के बोल फूटे—कहिए बच्चन बाबू, आपकी क्या राय है ?

माहे को चोट तो काफी लगी थी, फिर भी उसने तड़ाकू से कहा—
चुपचाप घोड़े पर चढ़िए, सीधे चले जाइए दरभंगा !

गुरांकर चतुरा चौधरी बोला—मैंने तुमसे नहीं पूछा है !

—तो, बच्चन बाबू की भी यही राय है।

दिगंबर अधिकारपूर्ण टोन में बोला और बच्चन की ओर देखने लगा।

—हाँ बच्चन बाबू ?

.....

बच्चन की मानो धिम्धी बँध गई हो ! एक शब्द क्या, एक अक्षर भी उसके मुँह से बाहर नहीं आ रहा था।

दूल्हे का भगिया खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर लोगों से कहा उसने—आप सब कब तक खड़े रहेंगे ? आइए, बैठ जाइए...

हम बैठने नहीं आए हैं—एक बोला, शायद गोन उड़ा था।

तो, लो फोड़ दो ! यह रहा मेरा सिर—आवेश में भरकर दूल्हा बोला और माथे को जरा आगे बढ़ा दिया।

राम राम राम राम !!—बच्चन बोला।

दिगंबर ने कड़ाई से कहा—बच्चन बाबू, यह बाबू साहेब जितनी देर लगाएँगे अशांति उतनी ही बढ़ेगी। आप यह गाँठ बाँध लीजिए कि गाँव का एक-एक नौजवान पिटते-पिटते चिछ जायगा मगर यह ब्याह

नहीं होने देगा । यह बहुत बड़े आदमी हैं, इलाके भर में नामी हैं । इनके दो लड़के पटना और मुजफ्फरपुर में प्रोफेसरी करते हैं, एक लड़का लहेरियासराय में वकालत करता है.....लाज-शरम को धो-धाकर यही पी गये हैं तो क्या हम भी बेहया बन जायें ? पंडित जी लालच के मारे उठा लाये हैं इन महाशय को, उनकी बात छोड़िए । बिसेसरी जैसी तो इनके नतनी-पोती होगी...यह अभी सीधे नहीं मानेंगे तो बाँध-बँधकर और खटोले पर ढोकर इन्हे कल तक फिर सौराठ पहुँचा दिया जायेगा, इन्हीं के खिलाफ कल नौजवानों का हम एक जुलूस निकालेंगे । समझ क्या रखा है इन्होंने आखिर ? खुद ही बाबू साहेब अपनी बेइज्जती करा रहे हैं ! ठीक है, अकिल भी सठिया गई होंगी !...

बच्चन बुत बना खड़ा रहा ।

दुनाई का भी वही हाल था ।

अन्दर भूँकते-भूँकते पंडितजी का गला अब अजीब आवाज निकाल रहा था । उधर बाहर वाली एक कोठरी में घटकराज की नाक बदस्तूर अपनी तरन्नुम में थी ।

ढहलेलवा बैठे था, शोरगुल ने उसकी तंद्रा को तोड़ दिया था । अब वह लोगों की ओर मुलुर-मुलुर देख रहा था ।

दुल्हा का माथा चक्कर खा रहा था । जिन्हें उसने महज छोकरे समझ रखा था, उन्होंने अब उसकी धोलाई बन्द कर दी थी । वृद्ध-विवाह के विरोध में इस प्रकार का संगठित मोर्चा ! इस बात की तो बाबू चतुरानन चौधरी ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कभी ! काल बली जो न दिखावे, जो न सुनावे !

उठो, चलें—बाबू चतुरानन चौधरी ने भांजे से कहा और माथे पर पगड़ी डालकर उठ खड़े हुए । हाथ से नौकर को चलने का इशारा दिया । तख्तपोश से नीचे उतरे, जूते पहनकर अँगनाई में आये ।

भगिना ने पहला काम यह किया कि तख्तपोश के नीचे से जीन ले जाकर घोड़े की पीठ पर डाल दी। लगाम बाबू साहेब ने घोड़े के मुँह में खुद ही डाला।

सब चुप थे। भीतर खोखा पंडित भूँक रहे थे। बाहर कभी-कभी वह कुतिया भूँक उठती थी।

उच्चकर बाबू चतुरा चौधरी घोड़े पर चढ़ गये और वह चल पड़ा। उन्होंने न किसी से कुछ कहा और न बच्चन के नमस्कार का ही प्रत्युत्तर दिया। हाँ, भगिना से कहते गये—धीरे-धीरे आओ तुम दोनों, तार-सराय में मिलेंगे.....

भावी दूल्हा के भगिना बाबू और गठरी-मोटरी का भार सँभाल कर ढहलेल खन्नास उधर चले तो इधर पेट्रोमैक्स भी अपनी अंतिम साँस ले रहा था।

नौ

थोड़ी रात थी तो एकाएक बादल उमड़ आये और डबल अछार* बरखा हुई।

रात की घटना को भूलकर लोग अपने-अपने काम में लग गये थे।

हलवाहे बैलों को आगे किये कंधे पर हल सँभाले अपनी-अपनी दिशा में जा रहे थे। हेडुआ भी उनमें था, वह बूलो का अपना हल-वाहा था।

खोखा पंडित, घटकराज और बच्चन पौ फटने से पहले ही घर से निकल गये थे। हवेली का लाच्छन ऐसा लग रहा था कि ऊपर महामारी मँड़रा रही हो। उत्साह और जीवन का एक भी निशान बाकी नहीं था। वर्षा की चोटें खाकर भी बीच आँगन का वह कलात्मक† अइपन मिट बिलकुल ही नहीं

*तोड़, वर्षा की एक मात्रा। †आलिपन, चित्र।

गया था। घर से निकलते समय पंडित जी खीझ के भारे खुद ही उसे ँँडी से घिसकर मिटा गये थे। अपने हाथों से अंकित किये हुए मांगलिक चित्र का इस प्रकार अवसान देखकर पंडिताइन देर तक रोती रही थीं, रोती-रोती बरामदे की भींगी स्तह पर ही बेचारी सो गई थीं।

बिसेसरी को बुखार चढ़ आया था, रामेसरी संज्ञा-शून्य होकर बेटी के पायताने औंधे मुँह लेटी हुई थी।

बच्चे रात देर तक सो नहीं सके थे, वे अब तक बेसुध सोये पड़े थे।

बड़ी और छोटी बहूएँ अपनी-अपनी देहरी* पर चौकट† में पीठ टिकाये और कमर टेढ़ी किये बैठी थीं, बाईं हथेली पर बायाँ गाल थामे। मम्तली रसोईवाले घर के ओसांग में भाड़ू दे रही थीं। चेहरा उसका भी फीका ही नजर आ रहा था।

दुनाई और छोटा लडका बुदुर अटक में अभी तक सो रहे थे। मँभला सवेरे उठकर, दिसा-फराकत में निपटकर मधुवनी की छबज्जी गाड़ी पकड़ने इसटीसन जा चुका था। यों भी वह अपने वकील साहेब से आज हाजिर होने की बात करके आया था। सभला गाछी‡ की ओर इस मतलब से निकल गया था कि तीन-चार गाही आम तो जरूर अपना हिस्सा हुआ होगा।

दालान में पेट्रोमैक्स अब तक उसी तरह लटक रहा था। तख्तपोश पर कंबल, दरी और उल्लैच ज्यों के त्यों बिछे पड़े थे। मुखियावाला बड़ा पंखा उस पर उसी भाँति पड़ा था, भीत से टिका हुआ।

माहे पर पंडितजी ने रात जो खड़ाऊँ फेंकी थी, उसे अँगनाई से उठाकर और जोड़ी से मिलाकर छुकउड़ी ने तख्तपोश के नीचे रख दिया था, वे भी वहीं पड़ी थीं।

* दहलीज, देहली। † चौखट। ‡ बगीची।

चाँदी की खिलवट्टी* में सँभाल कर रखे हुए पान के आखिरी दो बीड़े यहाँ आने पर चतुरा चौधरी ने मुँह के भीतर डाले थे, ऊपर से किमाम और पतिनजार† डाला था। फिर थोड़ी देर बाद गाढ़ी पीक की जो पिचकारी बाबू साहेब ने छोड़ी थी, वह अँगनाई की उस टोस सतह पर अब भी अमिट थी—रात्रिशेष की घनघोर-घटाओं के प्रबल आघात कुछ भी कहाँ बिगाड़ सके थे उसका ?

दिन काफी चढ़ आया तो दुनाई की भी नाँद टूटी, उसने बुदर को झकझोर कर उठा दिया।

दोनों मिलकर फर्श, दरी, कंबल वगैरह समेटने लगे। किसी को तो आखिर समेटना ही था। लगन के दो दिन और बाकी थे। इस बार जो नाटक होना था हो चुका था। अब इन दो दिनों में बिसेसरी के लिए दूसरा दूल्हा कहाँ से आ जाएगा ? अगहन में अगर उसके भाग ने अपना जोर दिखाया तो मिल जाय शायद कोई ठौर-ठिकाने का आदमी !.....यही सब सोच रहा था दुनाई और बुदर को भी हिदायत दे रहा था काम की और खुद भी कर रहा था।

...कहाँ मिलते हैं अच्छे लड़के ? लड़की का ब्याह बड़ा मुश्किल काम है ! रामजी के हाथों शिवजी का भारी धनुष तोड़ा जाना उतना कठिन काम न भी हो मगर सीता के लिए अच्छा लड़का मिल जाना अब उतना आसान काम नहीं रहा। रामजी सैर करते हुए मिथिलापुरी में दाखिल हुए, सीता जी के अभिभावकों को लड़का पसंद आ गया। गुरु विश्वामित्र भी चट से राजी हो गये ! धनुष पीछे उठा था न, बातचीत तो पहले ही उठी थी !...दिगंबर और माहे ला देंगे कहीं से कोई दूल्हा

* पान के बीड़े रखने की डिबिया। † बनारस का मशहूर और महँगा जर्दा।

हमारी भांजी के लिए ? जिसकी अपनी बहन क्वॉरी बैठी हो वह दूसरे की लड़की-भांजी की शादी के लिए कहाँ से आदमी गढ़ेगा ?...

टुनाई का ऐसा सोचना गलत थोड़े ही था ?

मल्लिक की बहन शकुंतला सत्रह साल की थी, अब तक उसका ब्याह न हो पाना नौगछिया के सयानों-समझदारों की भलमनसाहत पर एक करारा तमाचा था, जमाना उनकी मूँछों को मानो चैलैज दे रहा था ?

दिगंबर को लेकिन इस फिक्क ने कभी परेशान नहीं किया। बूढ़ी या अघेड़ किसी स्त्री ने साहस करके अगर उससे कभी पूछ ही लिया तो चट से जवाब मिलता—क्या जल्दी पड़ी है अभी चाची ? आदमी का बचपन तो बीस साल की उम्र तक चलता है ! चार दिन और खा लेगी, खेल लेगी। तब तक अपना कुछ सीख-साख भी लेगी ही।

ऐसा जवाब पाकर औरतें दिगंबर का मुँह ताकती रह जातीं। उनकी समझ में आता ही नहीं कि यह कैसा भाई है। सास-ननद और घरवाला खुद जितना सिखाता है उतना भला और कोई क्या सिखलावेगा ? धाकड़* दीखती है शकुंतला, बाँह ऊपर करती है तो छप्पर छू जाता है और अपने भाई के लेखे अभी छोटी है ! हुँह !

नुकाचीनी के इन उड़ते रेशों से दिगंबर कभी नहीं घबड़ाया। बड़ी लगन से वह शकुंतला को पढ़ा रहा था। प्राइवेट तैयारी से मिडिल करवा दी थी। आजकल साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा का कोर्स ले दिया था, थोड़ी-बहुत अँग्रेजी भी चल रही थी।

दिगो खुद कहानियाँ लिखता था, अब तक चार-छः से जादा नहीं लिखी होगी। यों अधूरी तो दसियों पड़ी थीं, फुटकल कागजों और स्कूली काँपियों के बाकी बचे पन्नों में बिखरी हुई थीं—कुछ एक पेन्सिल की धुँधली-मिटती लिखावटों और कुछ एक नई-पुरानी निचों की पतली-मोटी

*साँड़, दोगला तगड़ा बैल।

व हल्की-गाढ़ी नीली-बैंगनी लिखावट में। वे किसी साहित्यकार तक बेशक नहीं पहुँची थीं लेकिन बूलो और माहेश्वर ने और अपने गँवई स्कूल के उठती मूँछों वाले दो छोटे मास्टर्स ने दिगंबर मल्लिक की एक-एक कहानी ध्यानपूर्वक सुनी थी, अपना-अपना परामर्श भी दिया था। अनेकों सुभाव दिगंबर को पसंद आये थे, उन्हें वह अमल में ला चुका था।

दिगंबर का पिता नीलकंठ मल्लिक बिहार बैंक (पटना) में असिस्टेंट एकाउंटेंट था। कुल जमा २१०) मिलते थे उसे। '३०-'३२ के राष्ट्रीय आन्दोलन में हाई-स्कूल की मास्टरी छोड़कर और नमक बनाकर नीलकंठ बाबू जेल चले गये, साल भर की सजा हुई थी। छूटकर आये तो पिता का देहान्त हो चुका था—दिगो के दादा मुंशी विदेश्वर मल्लिक बरह-गोड़िया के खरौड़े-खानदान में अपने अंतिम दिनों तक एकमट* थे। उन्हीं की अरजी हुई संपदा पर यह मल्लिक परिवार नौगछिया के उन पाँच-सात सुखी परिवारों में से एक था। दो लड़के, दो लड़कियाँ—बस, नीलकंठ की औलाद की सीढ़ियाँ यहाँ आ के ठमक गई थीं। महिलाओं की मंडली जुटती और संतान का प्रसंग छिड़ता तो ललाइन दच्छिन तरफ हाथ-मुँह उठा के कहा करती—दुहाई गगा मइया की, अपने तो यही चारो जिँएँ और अच्छे दिन देखे-दिखलावे ! खॉन्चा भर धी-पूत ले के क्या करेंगे?... बात की यह आखीरी कड़ी पंडिताइन जैसी बरियार† कोख वाली सुहासिनों के मरम को आर-पार छेद डालती थी, उनके लिए फिर वहाँ बैठना कठिन हो जाता !

गणित में कमजोर था, नाइन्थ में दो बार फेल हुआ। और तब से दिगंबर घर ही रहने लगा। बाप ने भी छोड़ दिया। उनका ध्यान अब छोटे पर पड़ा क्योंकि वह हिसाब में भी तेज था और अँग्रेजी में भी—लंबोदर को नीलकंठ बाबू अब साथ रखने लगे। बाकरगंज (पटना) में

*एकाउंटेंट, हिसाब रखने वाला किरानी। †अच्छी उपजवाली।

सात साल पुराना अपना डेरा था, दोनों बापूत* साथ रहते। खाना तिरहुत भोजनालय में।

प्रख्यात काँग्रेसी नेता गुणवंत लाल दास की मेहरबानी से यह नौकरी नीलकंठ बाबू स्वदेशी शासन के पहली दौर (१३७-१४०) में पा गये थे। ये भी गणित में तेज। स्कूली जीवन में गणित का ही अध्ययन इनके जिम्मे पड़ता था।

उनके अपने ही कहने के मुताबिक दिगंबर की हिसाबी कमजोरी पैतृक नहीं, मातृक थी। उसके नाना यानी नीलकंठ बाबू के ससुर श्री यदुनन्दन लाभ मँथली और पुरानी हिंदी (व्रजभाषा-अवधी) के सुकवि थे, आप “ललित किशोर” उपनाम से अपने इलाके में प्रसिद्ध रहे—उन दिनों बिहार बंगाल के अन्दर था, युनिवर्सिटी कलकत्ते में ही थी, लाभ जी तीन बार मैट्रिक में फेल हुए...तीनों बार गणित ही में गिरे थे। तभी से अपना मन दूसरे विषयों से हटाकर वह कविताएँ लिखने लगे और “ललित किशोर” नाम रखा; घर-गिरस्ती का भार आ पड़ा तो भी “ललित किशोर” जी की प्रतिभा कुंठित नहीं हुई। सो, दिगंबर ने अपने नाना की विरासत सँभाली थी। पिता को मालूम हो चुका था कि कहा-नियाँ लिखता है।

ललाइन को इन बातों से कोई मतलब नहीं था। वह थीं तो साक्षर मगर हनुमान चलीसा, नागलीला, दानलीला, घरेलू काज-परोजन के गीत मुसाइ ठाकुर की नचारियाँ†—इनसे अधिक कुछ नहीं बाँचती थीं...जरूरत भी क्या थी!

आज दिगंबर दिन भर सोता रहा!

सबका यही हाल था—बूलो, उसकी भाभी...डेढ़ पहर दिन—उठे।

*बाप और पूत। †नचारी; लाचारी; लोकगीत जो शिव को संबोधित करके अपनी बेबसी के बारे में होते।

खा-पीकर जो सोए सो घड़ी-आध-घड़ी दिन बाकी रहा तभी जा के उठे थे। हाँ, भाभी को बच्चे ने उतना नहीं सोने दिया जितना वह चाहती थी।

माहेश्वर पर लाठी की चोट पड़ी थी, माँ ने धरेलू उपचार किया था। वह भी दिन भर आराम करता रहा।

साँझ तक जब खोखा पंडित और बच्चन नहीं लौटे तो पंडिताइन का जी धक-धक करने लगा...

कहाँ फिर वही दूल्हा न आ जाय आज भी !

सौराठ जाकर दूसरा दूल्हा भी तो ला सकते हैं !

बुढ़वा अपना रुपैया वापस ले लेगा।

अभी तो आ सकते हैं, अबेर* थोड़े हुआ है ?

तरह-तरह के तर्क-वितर्क पंडिताइन के मन को भूकभोर रहे थे। रात को तो खैर तूफान ही आ गया, आज दिन में भी बेचारी से कुछ खाया नहीं गया। पानी ढकोस-ढकोस कर अपने मुँह का स्वाद फीका कर लिया सो अलग। रात जो खीर पकी थी दूल्हा-दूल्हिन के लिए, वह सबेरे बच्चों ने खाई। उमस के कारण भात-दाल खाने के काबिल नहीं रह गये थे, उन्हें फेक दिया गया। दाल थोड़ी ले गई सुबधा की माँ; भात बिलकुल गल गया क्योंकि शाम को उसे उतरे चौबीस घंटे हो गये थे। बड़ी और पकौड़े दिन में कुछ तो बच्चों ने खाये थे; कुछ सँभला भाई, दुनाई और बुदर ने। बहुओं ने भी थोड़ा-कुछ खाया ही होगा।

रामेसरी ने तीन बार पानी पिया था, बस। बिसेसरी का बुखार अब उतर चुका था। नानी संझा-बाती† के बाद छोकरी का कपार छूकर बोली—जर उतरा नहीं, मितरा गया है ! खाने को कुछ नहीं, पीने को औंटा हुआ पानी मिलेगा...

किसने खाना माँगा है ?—बिसेसरी रुआँसी होकर बोली और करवट

*बेवक्त। †संध्या का दीप, दिया-बाती, शाम के वक्त दिया जलाना।

फेरकर लंबी तन गई । रामेसरी बरामदे में बैठी थी सो उठ आई और बेटी से सटकर बैठी, हाथ फेरने लगी उसकी पीठ पर ।

माँ चली गई तो पूछा—कैसा मन है ?

बिसेसरी कुछ नहीं बोली ।

रामेसरी ने अपनी दहिनी हथेली पहले तो उसके कपार पर रखी, फिर छाती के बीच ले गई । फिर उसकी एक हथेली को अपने कपार से लगाया और बोली—नहीं गे*, कौन कहता है कि बुखार भितराया हुआ है !

हथेली छोड़ दी उसने ।

थोड़ी देर चुप रही, विभोर होकर बेटी के उतरे चेहरे को देखने लगी ।

कुछ छन बाद उसकी उड़्डी छूते हुए पूछ दिया—भूख लगी होगी बेटा !

लड़की ने इनकारी में आहिस्ते से माथा हिला दिया ।

—गाय का गरम दूध थोड़ा जरूर पीना पड़ेगा, हाँ !

जवाब में फिर उसी तरह सिर हिला ।

—तो मैं भी कुछ नहीं खाऊँगी !

अब लड़की की भौंहें तन गईं, कड़क कर उसने कहा—मैं कोई निरी बच्ची हूँ ? दुधमुँही ? क्या समझती हो मुझे ?

रामेसरी अकबका गई, कौन-सी ऐसी बात उसके मुँह से निकली जिससे बीसो के जी को आघात पहुँचा है ? निगाहों को सामने की सादी भीत पर टिका कर वह सोचने लगी...

थोड़ी देर बाद रामेसरी ने बेटी के मुँह की तरफ अपनी नजर फेरी तो उसके गालों पर आँसू के टधारा† दिवरी की धुँधली रोशनी में भी चमक रहे थे !

वह दंग रह गई, अब भी अपनी भूल उसकी समझ में नहीं आई ।

एक अपराधी की कातर दृष्टि से माँ अपनी बेटी के तरफ देखने लगी ।

*री ! †बहुत पतला प्रवाह, पतली धार ।

आँचल के पल्ले से स्वयं ही अपनी आँखें पोछती हुई बिसेसरी बोली—माँ, मुझे किसी काम के लिए मजबूर मत करो !

रामेसरी धीरे से बाहर निकल गई ।

दस

तारसराय स्टेशन के प्लेटफार्म पर कंबल बिछा कर चतुरा चौधरी लेटा हुआ था, भगिना भी उसी मुद्रा में था । गटरी-मोटरी का बाकी सामान सिरहाने सहेज लिया गया था ।

ढहलेलवा को बैठे ही बैठे ऊघ आ रही थी । वह कुछ हट कर बैठा हुआ था ।

पौ फटने को थी । अभी-अभी बादल बरस चुका था, इसी से हवा में कुछ ठंडक थी । पेड़ अपनी-अपनी पत्तियों से अब भी मोटी-मोटी बूँदें टपका रहे थे । सूखी धरती ने दिल खोल कर वर्षा का स्वागत किया था । जहाँ-तहाँ मेढक पुलकित हो-होकर ऋतु की रानी की जयजयकार कर रहे थे । ऊसर खेतों की बलुआही मिट्टी पर से नंगे पैरों चलना बड़ा अच्छा लग रहा था ।

खोखा पंडित आपे में नहीं थे । ऐसा लग रहा था उन्हें कि खोपड़ी के भीतर कोई मानो फरही भून रहा है । रात भर खीझ और लाचारी के मारे वह कबाब की तरह सिंकते रहे थे ।

घटकराज का भी जी बेचैन था । इतने ब्याह आज तक उसने ठीक किये थे, ऐसी दुर्घटना तो कभी हुई ही नहीं थी ! मुट्ठी भर छोकड़ों ने सयानों की नाक में कौड़ी बाँध दी । लेकिन गाँव के लोगों ने लापरवाही क्यों दिखलाई ? मुखिया क्यों नहीं आगे आया ?

बच्चन भी बहुत चिंतित था । अब बिसेसरी का क्या होगा ? क्या बुरा था, यह शादी हो जाती तो निश्चित हो जाते ! वह पहले ही शंकित

था कि गाँव के नौजवान कोई खुराफात न खड़ा करें, सो आखिर वही हुआ...

दूर से ही घटकराज ने आवाज दी—चौधरी जी !

आइए, आइए !—उधर से जवाब आया ।

यह स्वयं मालिक का स्वर था ।

वह उठ कर बैठ गया था । भांजे को उसने पड़े ही छोड़ दिया । वही आवश्यकता थी आखिर बेचारे को उठाने की ? पास ही लोटा रखा था, पानी से भरा । मालिक ने गर्दन फेरकर वहीं कुल्लियाँ कीं, मुँह-आँख-नाक-कान-कपार पोंछे और छोटका अँगोछा खोजने लगा । नहीं मिला तो नौकर को आवाज दी—गमछा कहाँ रखा रे ?

डू !—भगिना नांद भरे स्वर में ही बोला और पीठ के नीचे हाथ डाल कर गमछा निकाला, मामा ने थाम लिया । गमछा से हाथ-मुँह पोंछ कर चतुरा चौधरी पत्थी मार के बैठा । तब तक वे भी नजदीक आ गये थे ।

कंबल पूरा बिछा था । अभी बैठने को काफी जगह उस पर थी । काली ऊन का आठ हाथ लंबा, चार हाथ चौड़ा नेपाली कंबल । सभी बैठ गये । बच्चन ने छाता और गठरी एक ओर रख दिये ।

बातचीत के सिलसिले को पहले बच्चन ने ही चालू किया !

—इधर तो वर्षा हुई नहीं मानो ! प्लेटफार्म गीला भर दीखता है !

चौधरी ने कहा—आपके तरफ काफी हुई होगी ?

हाँ—घटकराज ने अपना मुँह खोला—वायुदेवता का खेल है ! एक गाँव में मेघ बरसता है और आधा कोस हटकर दूसरे गाँव में धूल उड़ती है । सब परमात्मा की कृपा है !

परमात्मा का नाम सुनकर पंडित ने जोर की साँस ली ।

घटकराज ने बच्चन से पूछा—मधुबनी कै बजे जाती है टेन ?

छऽ बजने में दस मिनट रहता है तब ।

अभी क्या टेम होगा ?

ठहरिए, स्टेशन से घड़ी देख आऊँ !

जाओ !

खोखा पंडित अपने को महा-अपराधी समझ रहा था। वह किस मुँह से बाबू श्री चतुरानन चौधरी के सामने अब कुछ कहे ? नजर मिलाने तक की हिम्मत नहीं हो रही थी ! अपना बस चलता तो लौटाकर चौधरी को अभी घर ले चलते और आज दुपहर को ब्याह हो जाता...

पाँच बजे हैं अभी—बच्चन ने वापस आकर कहा—अभी देर है !

यह लोटा लो, तुम तब तक डोल-डाल से हो आओ—पंडित ने लड़के से कहा तो वह मतलब समझ गया।

लड़के के सामने पराये के आगे झुकना का* दु कैसा-कैसा बुझता था !

लोटा लेकर बच्चन चला गया तो हाथ जोड़कर पंडित जी बोले—बाबू साहेब, यह जो कुछ हुआ है सो सब मेरे ही पापो का फल समझिए। अवश्य ही पूर्वजन्म में मैंने कोई भारी प्रत्यवायन किया होगा.....

गला रूँध आया खोखाई भा का, आँसू उमड़ आये। चौधरी का चेहरा साफ-साफ नहीं दीख रहा था। कपार की नसें उभर आईं।

आहिं* रे बा ! रोते हैं आप ?—घटकराज ने पंडित का कंधा झकझोरा।

आपका नहीं पंडित जी, जुग का दोख है यह !—चौधरी बोले—इसमें भला रोने की क्या बात है ?

पंडित ने स्वयं ही धोती के खूँट से अपनी आँखें पोंछी और खखार कर गले को साफ किया, बगल में झुके और बाएँ हाथ की पहली-दूसरी उँगलियों से नाक के पूड़े को दबाकर पानी निचोया। धोती के पल्ले से नाक और उँगलियाँ पोंछ लीं।

*क्या तो। †बहुत बड़ा कुकर्म। ‡हाय रे बाप !

घटकराज ने अपनी नस निकाल रखी थी बाईं हथेली पर और नाक के दोनों पूंछों में एक-एक बार डाल भी चुके थे शायद । नस-भरी चुटकी को नचाकर वह बोले—समझा चतुरानन बाबू, काम तो यह होकर रहेगा । स्वयं विधाता भी इस कार्य को रोक नहीं सकते । चार दिन के लिए तिथि समझिए कि आगे को घिसक गई है, बस इतना भर विधाता अड़ंगा डाल सकते थे सो हो गया; उनकी भी बात रह गई । आप नाहक ही उठ आये, काम तो आज हो के रहता यह.....

इसमें भी क्या संदेह की कोई गुन्जाइश थी ?—पंडित टनमना* कर बोले ।

चतुरा चौधरी अब भी गंभीर बना रहा । उसे दिगंबर का तमतमाया चेहरा बार-बार याद आ रहा था । आज क्या, कभी भी यह नौजवान अब अपने गाँव में इस तरह की शादी नहीं होने देगा । हाँ, यह दूसरी बात है कि लड़की दूसरी जगह पहुँच जाय और वहाँ जैसे-तैसे उसकी संध में सेंदुर डाल दूँ...लेकिन ये छोकड़े लड़की पर निगरानी नहीं रखेंगे क्या ?

चौधरी को चुप पाकर पंडित बोले—हमने सब सोच लिया है । बच्चन समस्तीपुर के मारवाड़ी हाईस्कूल में संस्कृत पढ़ाते हैं । अब कुछ महीनों के लिए परिवार को भी साथ रखेंगे । विश्वेश्वरी भी साथ रहेगी । अग्रहन में वहीं यह कार्य संपन्न होगा.....

फिर घटकराज की ओर मुँह करके कहा—ठीक है न मटुकी बाबू ?

सोलहो आना दुरुस्त !—घटकराज ने समर्थन किया ।

थोड़ी देर चुप रहकर चतुरानन चौधरी ने कहा—पहले गाँव के लड़कों को तो समझा लीजिए !

खीज भरी आवाज में पंडित बोला—सब अवारा हैं बाबू साहेब !

*फुर्तीला होकर ।

और दिगंबर ? उसे तो गाँव से निकाल बाहर न करूँ तो आप मेरे नाम पर काला कुत्ता पोस लीजिएगा !

नस की डलब चुटकी नाक के दोनों पूँड़ों में ठूँसकर घटकराज ने खोखा पंडित की ओर अपनी गर्दन लम्बी की—बाप क्या करता है इसका ?

—पटने में नौकरी करता है ।

—कितना पाता है ?

—अढ़ाई सौ ।

—यह छोड़कर घर बैठे-बैठे यही सब करता रहता है ?

—घर का काम देखता है, बाप ने छुट्टा छोड़ रखा है ?

इस पर चतुरा चौधरी छुटी मूँछों पर हाथ फेरने लगा । उन अपने गाँव के दो नौजवान याद आये जो डकैती के भूटे मामले में छः महीने की कड़ी सजा पाकर आजकल जेल की हवा खा रहे थे । यह दिगंबर वगैरह कहीं उसके गाँव में होते तो इन्हें भी वह आसानी से किसी केस में फँसा सकता था । छिः नौगल्लिया भी यह कोई बस्ती थी ! हिजड़ों का रैनबसेरा !! एक भी चेहरे पर पानी नहीं, किसी की भी आवाज में कड़क नहीं !

दूसरा विकल्प यह भी उठा कि बैदनाथ धाम या काशी में क्यों न किया जाय ब्याह का प्रबन्ध । तीर्थ के बहाने लड़की, उसकी माँ और नानी वगैरह का वहाँ पहुँचना कठिन नहीं होगा । चौधरी के लिए भी सुभीता रहेगा । इस दृष्टि से समस्तीपुर कहीं ज्यादा असुविधाजनक स्थान है.....

बच्चन दिशा-फराकत से लौटे तो उन्होंने भी इसी विचार को पसन्द किया । इस तरह के काम घर से जितनी अधिक दूर किये जायँ उतना अच्छा ।

घंटी बजी तो सबको समय का ज्ञान हुआ । दरभंगा से ट्रेन छूट चुकी थी । लेकिन चौधरी ने कहा—हम सौराठ थाफर अब क्या करेंगे,

सीतामढ़ी न लौटना है हमें ? मैं तो खैर घोड़े पर ही जाऊँगा । ये दोनों ट्रेन से दरभंगा और वहाँ से सीतामढ़ी आ जाएँगे ।

घटकराज को तो मधुबनी की ट्रेन पकड़नी ही थी । सौराठ का दंगल अभी दो रोज और था, तब यह कैसे होता कि घटकराज कहीं दूसरी जगह जाते ?

पंडित का मँझला लड़का तब तक दिखाई पड़ा । उसे भी तो इस ट्रेन से जाना था ।

घटकराज का भी टिकट वही कटा लाया ।

बच्चन को लौटकर घर आना था लेकिन वह भी चौधरी के भगिना बाबू के साथ दरभंगा तक जाने की बात करने लगा ।

खोखा पंडित और घटकराज चौधरी को तनिक अलग ले गये और कहा—बाबू साहेब, यह भवितव्य* था । हमारी आत्मा तो तब तक शांति नहीं प्राप्त करेगी जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं हो जायगा और अग्रहन में यह हो के रहेगा ।

चौधरी ऊपर-ऊपर मुसकुराया ।

ट्रेन आई, सौराठ जाने वाले मुसाफिर डिब्बों में तो ठुंसे थे ही; पावदान पर खड़े—बाहरी हैंडल पकड़े भी सैकड़ों लोग थे । सौ-पचास तो छत पर भी बैठे थे, गठरी-मोटरी समेत !

घटकराज को पावदान पर एक पैर टिकाने भर जगह मिली सो भी लड़-भगड़कर ! पंडित का मँझला बेटा कछौटा बाँधकर छत पर चढ़ गया, वह वहीं बैठा ।

इतने में पूरब (सकरी) से भी ट्रेन आती दिखाई पड़ी । पंडित ने कहा—बच्चन, एक टिकट मेरी भी ले लेना हड़ाही† का ।

बाबू साहेब खुद घोड़ा कस रहे थे ।

* होनहार । † दरभंगा जंक्शन का देहाती नाम ।

पूरब की ट्रेन आई तो उसमें उतनी ठसमठस नहीं थी। चौधरी का भांजा, टहलेलवा, पंडित और बचन—चारो अच्छी तरह जगह पा गये। ट्रेन चली गई तो चतुरानन चौधरी ने भी घोड़े को पच्छिम-उत्तर की ओर मोड़ा। एड़ का इशारा पाते ही वह हवा हो गया।

दिन आधा पहर चढ़ गया था। आसमान साफ था, धूप अपना मुनहलापन भाड़ कर तेजी को पकड़ने लगी थी।

ग्यारह

लगन के दिन जैसे आये वैसे ही चले गये।

नौगछिया के दो लड़कों की शादी हुई थी ! लड़की का ब्याह एक पहले ही हो चुका था, घर-कथा* से ही।

सहुआइन ने पिछले साल अपनी संचित निधि में से २५०० की रकम लगाकर बट्टा-भर जमीन में छोटा सा चमच्चा खुदवाया था, सो अभी तक क्वॉरा ही था। जेठ की पुरनिमा के दिन बेद और कर्मकांड जानने वाले दो पंडितों को बुलवाकर विधिपूर्वक बुढ़िया ने जग्ग करवाया, साथ ही फल-फरहरी का ब्रह्मभोज भी हुआ। पड़ोस के मशहूर बढ़ई छेदी ठाकुर का तैयार किया हुआ जाठ खड़ा किया गया, चमच्चा के बीचोबीच। जाठ के सिरे पर लोहे का मामूली मोर क्या ही अच्छा लग रहा था, नीला रंग लोहिया कालेपन को लील गया था और मोर की खूबसूरती कई गुनी बढ़ गई थी। भिंडे पर, अलग लकड़ी का छोटा थंभ गाड़ा गया था जिस पर जलाशय की मलिकाइन का नाम और यज्ञ की तिथि बगैरह

* आपस की जान-पहचान के जरिये ही ब्याह की जो बात पक्की हो जाती है; इसमें पेशेवर घटक (दलाल) की जरूरत नहीं पड़ती, न सौराठ जाना पड़ता है।

मोटे-सीधे ढंग से खोदे हुए थे । थंभ का सिर दाढ़ी वाले चउमुँहा ब्रह्मा की तरह था । सहुआइन ने समूचे गाँव के ब्राह्मणों को भर-भर अँजुरी गोटा* सुपारी दी थी; पान-वान तो खैर तेलिन के यहाँ का लेता ही कौन ?...सभी के जुवान पर सहुआइन चढ़ी रही चार-छै दिनों तक । चार-चार, छै-छै गोटा-सुपारी किसको नहीं मिला था ? जर-जवार के बिरादरी के अपने भाई लोगों का भारी भोज हुआ—दाल, भात, चार तरकारियाँ, बड़ियाँ, बड़े, आम और आँवले का अचार, दही, चीनी, पके हुए शरही और कलमी आम...थई-थई मच गई; लोग धन्न-धन्न कर उठे ।

जहाँ देखो, सहुआइन की चर्चा !

—बड़ी भगतिन है ।

—जनकपुर† और सिमरिआ‡ तो किसी साल नहीं छूटता ।

—पिछले ही बरख बदरीनराएन हो आई है बुढ़िया ! गोड़ में धाव लेकर लौटी थी ।

—अपने तो धरमतमा है, बेटा मुला× बड़ा परपंची है कि नाही बहिना ?

—सो तो हइए है, मे !

—पहिली उमिर में देवर को रखे हुए थी !

—अपना आदमी बड़ा सीधा था, बिलकुल गऊ !

—लड़के तीनों अच्छा कमाते हैं ।

—कमाएँगे नहीं ? मुखिया का अउर इन तीनों का पेट एक ही है... मटिया तेल, चीनी, कपड़ा...सभी कुछ तो भकोसते हैं !!

—पुतोहू बुढ़िया का मान-दान करती है ?

*साबित और समूचा सुपारी, सुपारी की गिरी । †सीता की जन्म-भूमि । ‡सिमरिया घाट (गंगा) । ×मुदा, लेकिन ।

—छोटकिन भी* सिरिफ !

—गे मइयो !!

फतूरी जाकर सहुआइन को कभी-कभी नचारी सुना आते, बदले में वह लड़कों की नजर बचाकर सरइसा† की नामी तमाकू के दो बढ़िया पत्ते थमा देती; वह सँभालकर फिर ले आया करते ।

सहुआइन के इस शुभ कार्य पर अपने विचार व्यक्त करने के अनेक अवसरों का उपयोग वह कर चुके थे तथापि मुखिया जी के दालान पर अगली ही दुपहरिया को उन्हें फिर पंचमुख होना पड़ा ।

प्रसंग में ताप की मात्रा पराकाष्ठा पर तब पहुँची जब कि भीम ने कहा—सुपारी तनी दब‡ थी, मधुबनी के सेठ सागरमल के गोदाम में जैसी बढ़िया सुपारी मिलती है वैसा भला और कहाँ मिलेगी ? तिरपितवा महा कंजूस है...

तिरपित सहुआइन का बड़ा लड़का था, घर का मालिक ।

मुखियाजी बोले—हाँ हो ! सहुआइन का भी इसमें इशारा रहा होगा ! बाभनो को देना था न ?

फतूरी काका इस पर बमक उठे—जमाना कैसा है सो नहीं देखते हो बाबू ! अगले ही बरख तो लड़कों का जनेउआ करोगे, देखूँगा, कैसी सुपारी आती है तुम्हारे यहाँ और कै-कै ठो देते हो लोगों को ! हाँ ! बीस-पच्चीस साल हुए, बिदेसर मल्लिक ने अपनी माँ के श्राद्ध में भर-भर पन-बट्टा गोटा सुपारी सबको दिया था । गिरी ऐसी दमदार थी कि पाव भर तौलते तो छः से जास्ती सुपारी नहीं चढ़ा पाते तराजू पर ! उसके बाद अब सहुआइन का ही यह साहस है कि सुपारी के इतने अच्छे दाने भर-

*छोटी, लहुरी । †दलसिंगसराय और साहपूर-पटोरी वाले इलाके जो लाल मिर्च और तंबाकू की अपनी फसलों के लिए दूर-दूर तक मशहूर हैं । ‡घटिया ।

भर अँजुरी मिले हैं। ये भी भेंड़-बकरी के नेड़ी* जैसे थे क्या ? तौल कर देख लो, आठ-दस चढ़ाओगे तो पउआ ऊपर जायगा सीधे, हाँ !...

फतूरी कुछ और बोलते अभी मगर मुखिया ने बीच में ही उन्हें शात करने की चेष्टा की। उसने अनुनय के स्वर में कहा—नहीं फतूरी काका, सुपारी बड़ी ही अच्छी थी। बड़ी बजार (दरभंगा) में सबसे अच्छी दुकान है बाबूराम दनदनिया की। तिरपितवा वहाँ से सुपारी लाया था। अपनी दुकानदारी के लिए तो वह जहाँ-तहाँ से लाया करता है, मुदा यह तो धरम-पुन का काम था न...?

फतूरी की भौंहे ढीली पड़ चुकी थी, भीमनाथ को हिकारत की निगाहों से देखते हुए उतरते सुर में वह बोले—और बेचारी सहुआइन का क्या कसूर था इसमें ? वह खुद तो सौदा करने गई नहां ! ऐ ।

होठों के छोर कोंचिया† लिये और दाँतों को ड्योढ़ा-सबाया करके नपुंसक टोन में भीम बुदबुदाया—सो कहाँ, फतूरी, काका ! सो कहाँ कहता हूँ मैं—ई ई ई, ओ ओ ओ...मै तो, मै तो S S S...

जाओ भीम, तुम भी बोका ही रह गये !

फतूरी को अब जा के हँसी आई और मुखिया भी उधार की मुसकान ले आया कहीं से ।

तिरपित साहु अपर प्राइमरी पास करके पढ़ना छोड़ बैठा था। बाप की अकाल मृत्यु ने कच्ची उमर में ही डंडी-तराजू पकड़ने को मजबूर कर दिया। दोनों भाई अभी बहुत छोटे थे। वह तो माँ थी कि दुकानदारी की लड़िया चल निकली—दोनों माई-पूत सेर-बटखरे पर हावी रहते।

सहुआइन बड़ी लछ्मिनिया थी। जब से विधवा हुई तब से तो उसके भाग मानो खुल खेलने लगे। तिरपित का बाप सुचित छुटपन ही

*लेंड़ी, लेड़ी। †कुंचित कर लिये।

से पदरोगी* था, मिजाज का चिड़चिड़ा और अपने को सबसे बढ़कर बुधियार† समझनेवाला। जीते जी सुचिता ने अपने घरवाली की एक नहीं चलने दी थी।

सुचिता मर गया तो सहुआइन रोई तो काफी मगर भीतर-भीतर उसे उतना अपसोच नहीं हुआ—सोना और रूपा की काठी के जैसे तीन-तीन पूत थे, चार बीघा उपजाऊ जमीन थी, मजबूत कोल्हू और मुठिया सींगों-वाले दो नाटे सिलेबिया बैल थे, भीतवाले दो मकान थे और दूकानवाली बैठक थी। बाँहों और जाँघों का अपना भी पौरुख था। क्या नहीं था, सब कुछ था !

• राम जाने देवर से सहुआइन का क्या समझ था !

अमरितवा उसके घरवाले का सगा भाई हो सो बात नहीं, मगर दोनों में बड़ा ही नेह-छोह रहा। वह सुचित साहु का दूर का चचेरा होता था। पड़ोस के एक गाँव से जब-तब आकर चलते कोल्हू के पट्टे पर इस भाभी के पास वह बैठ जाया करता...

सहुआइन भउहें चढ़ा कर पूछती—कौन-सा पंचमेर‡ धरा है वहाँ रजउली में जो कूकुर की तरह बार-बार दौड़े जाते हो ?

अमरितवा गर्दन झुका कर चक्कर खाती हुई धरती पर अपनी निगाहों को जमाने का विफल कोशिश करता।

सहुआइन बीच-बीच में पट्टर-बैँधी आँखों वाले बैल को टिटकारती जाती, वह नाटा-सँबलिया बैल अपनी द्रुत-विलंबित गति में अविराम चलता होता।

*छोटी-छोटी बीमारी का हमेशा शिकार। †होशियार। ‡पंचमेल मिठाई (पाँच मिठाइयों—बालूसाही, इमती, लड्डू, चर्फी और गुलाब-जामुन का मेल।)

—अच्छा, बाबू, तुम तनी सँभालो कोल्हू, मैं कुछ ले आऊँ पानी-
वानी...

—नहीं भाभी, रहने दो। खा के तो आ रहा हूँ !

—फिर झूठ ! फिर !

हलकी-मीठी एक-एक चपत देवर के दोनों गालों पर पड़ जाती,
सिनेह और ममता का भूखा बाईस-चौबीस साल का अमरित इस पर भाभी
के सामने अपने को मानों बिछा देता...कोल्हू चलने की आवाज—टें~
~~~ चोोोोोो चीीीीीी.....और भाभी की प्यार भरी दुत्कार  
और दुधमुँहे भतीजे की किलकारियाँ...

अमरितवा चलते कोल्हू के खिसकते पटरे पर आँखें मूँदकर निश्चेष्ट  
बैठा रहता। बैल अपनी मद्धिम चाल पर पहुँच कर मशीन की तरह  
एकरस अविराम घूमता होता उसी चक्करदार परिधि में...

टाड़ा\* कब का भर चुका है, उसकी गोल-मटोल ग्रीवा को नहलाता  
हुआ तेल अब धरती को स्निग्ध बना रहा है...

—मइया री मइया !

सहुआइन की चीत्कार अमरित को सतर्क कर देती। अपनी भूल  
समझ कर वह सन्न रह जाता। भाभी दौड़ कर कोल्हू के नजदीक पहुँचतो,  
उकड़ूँ मुक जाती, भरा टाड़ा हटा कर अलग रख लेती और खाली टाड़ा  
कोल्हू की ठोरी से लगा देती। इतने में बैल वाले जुए का लंबा डंडा  
ऊपर से गुजर कर आगे बढ़ चुका होता और सहुआइन चक्करदार वेरे से  
बाहर निकल आतो।

मुसकुराती हुई कहती—इसी से तो सतमाय† तुम पर बिगड़ी रहती  
है ! जाओ, इतना तेल हमारा धरती को चटा दिया तुमने !

फिर एक-एक वही चपत।

---

\*तेल रखने का बर्तन (मिट्टी का)। †सौतेली माँ।

—भाभी, एक-एक चपत और !

सहुआइन को बरबस हँसी आ जाती । वह इस दुलखा देवर के अनुरोध को बेकार थोड़े जाने देगी !

—लो !

एक-एक और मीठी चपत !

—अब तो हुआ ?

—ऊँ !

—जाओ, मछरी का तनिक भुर्ता और मुट्ठी भर भात छिपिया\* में निकाल आई हूँ, पानी भी लोटा में करके रख दिया है ।

और, अमरित साहु जाकर भाभी का पसाद पा आते !

पीछे यही अमरितवा अपनी सौतली माँ का साथ छोड़कर नौगलिया ही रहने लग गया । सुचित उससे कसके काम लेता परन्तु भाभी की ममता ऐसी थी कि दो दिन के लिए भी कहीं दूसरी जगह जाना उसे बुरी तरह अखरता ।

तिरपित, मीतन और जुग्गी—तीनों लड़के सहुआइन के अमरित साहु की ही गोद गरमा-गरम कर उभरे थे । घरों के दो ठाठ† उसकी कारीगरी के सबूत थे । सुचित मरा, पीछे साल भर से अधिक अमरित सहुआइन के यहाँ नहीं रहा । हमेशा के लिए कहीं चला गया था ।

खोखा पंडित के लिए धोतियों का ब्रढ़िया जोड़ा पीले रंग में रँगकर सहुआइन ने जाने कब से सँजो रखा था । पंडित होते तो पहनकर बाहर के दोनों पंडितों के आमने-सामने बैठते और सहुआइन के इस शुभ कार्य की देख-रेख करते...माहे और दिगंबर ने ऐसा खुरपात‡ मचा दिया कि बेचारे गाँव छोड़ कर कहीं चले गये थे ।

\*छोटी थाली, रिकाबी । †ठट्टर, छप्पर का ढाँचा । ‡खुराफात, उपद्रव ।

जप-जग्ग, धरम-करम, पूजा-पाठ, भोज-भात ..इन सब कामों से सहुआइन जब निबट चुकी तो एक रोज तिपहरिया वह पंडिताइन के पास पहुँची । बाँस की रँगी खपच्चियों की डलिया में सेर आधेक सुपारी और धोतियों का वही पीला जोड़ा लेती आई थी ।

डलिया को सरका कर पंडिताइन के पैरों के करीब पहुँचा दिया और भूमि को छूकर मिट्टी माथे से लगाती हुई बोली—असिरवाद दो बुच्ची की अम्मा, यह चभच्चा जुग-जुग कायम रहे ! पानी कभी न तो घटे और न खराब हो ! हाय, सालों भर पंडित जी गाँव रहे और अब मेरे ही किसी पाप ने यह सब खुरपात उठ खड़ा हुआ ! पंडितजी बाहर चले गये !! बड़ी लिलसा\* से यह धोती मँगवाई थी, अपने हाथों से रँग कर—छाँह में सुखा कर और चुनिया कर रखी थी कि पहन कर पंडितजी उस रोज चभच्चे का जग्ग करावेगे सो दैव को मंजूर नहीं था...बुच्ची की अम्मा, मैं उन्हे भला कुछ देने लायक हूँ ? तुम्हीं बताओ ?

—भगवान ने तुम्हारा काम पार घाट लगा दिया, वह गाँव से बाहर हैं इसमें तुम्हारा क्या दोख ? बिसेसरी का कपार फूट गया नहीं तो वह कहीं क्यों गये होते !

पंडिताइन का स्वर दर्द में डूबा हुआ था । चार-पाँच दिन बीत जाने पर भी लगता था कि बेचारी का कलेजा अब भी उबल रहा है । आँख के संकेत से उसने मझली बहू को बताया कि डलिया उठा ले जाय अंदर और अपने को जरा सँभाल कर बोली—मेरे परदादे ने तालाब खुदवाया था और दादा ने उसका जग्ग किया । उसके बाद, सहुआइन, तुम्हें ही देख रही हूँ यह सब करते ! तुमने अपना इहलोक-परलोक दोनों बना लिया ! हम क्या तुम्हें असिरवाद देंगे ? हमारा तो अपना ही करम फूट गया है...

\*लालसा, चाह ।

सहुआइन समझ गई कि पंडिताइन का जी अभी तक बेकाबू है ।  
थोड़ी देर वह बैठी रही, बहुओं से इधर-उधर की बातें करती रही ।  
फिर उठकर वापस चली आई ।

## बारह

बर्खा समय-समय और हिसाब से होती आई थी । अबकी खेती के  
रंग-ढंग अच्छे थे ।

आधा सावन बीतते न बीतते लोग अपने-अपने खेत आबाद कर  
चुके थे । धान के हरे-हरे पौधों से एक-एक मैदान, एक-एक पाँतर  
हरियाली का समुद्र हो रहा था । बयार सिहकती तो इस समुद्र की हरित-  
नील-लोल लहरियाँ सातों सागर की तरंगित सुषमा को मात कर जातीं;  
खेतिहरों के मन-प्राण धान के लहराते पौधे देख-देख लहराया करते और  
भविष्य की सुनहली जालियाँ बुनने में उनकी आत्मा विभोर हो जाती ।  
जनपद की शस्यश्यामला प्रकृति सुन्दरी अपनी ओर देखते रहने वालों की  
बाहरी और भीतरी जलन छन भर के लिए तो अवश्य ही मिटा डालती...

तीज का त्यौहार आया और पंडिताइन को रुलाकर चला गया ।  
बिसेसरी की शादी हुई होती तो घर-आँगन गीत और उल्लाह से आज  
फिर गनगना उठता—मुदा विधाता ने ही जब इस छोकरी का कपार जला  
रखा है तो फिर नानी-नाना, मामी-मामा आखिर क्या करेंगे ?

अपने दुखी मन को बहलाने के लिए बिसेसरी ने घर के पिछवाड़े  
की तरफ वाली खाली जमीन को खुरपी से खोद-खोदकर तैयार किया ।  
उसमें लंकेसर, तारा, मधुरी और गंदा के पौधे लगाये ।

रामेसरी ने बाड़ी में तरकारियों के पौधे लगा रखे थे—भिंडी, तरोई,  
बैगन, नेनुआ । अरुई और सूरन आप ही आप उग आये थे । दो पुश्त  
से इनकी खेती थोड़ी कुछ पंडित की बाड़ी में होती आई थी । सो, बीज

न डालने पर भी बरसात के आरंभ में गूरन और अरुई की पेंपी यों ही निकल आती ।

तगर, कुमुदनी ( छोटा कचनार ) थलकमल, इन्द्रकमल, अड़हुल, कनेर, करवीर आदि कुछ भाड़ तो पंडित के दालान के आगे ही थे और कुछ बाड़ी वाली बगिया के अंदर ।

खोखा पंडित का खानदान धर्मभीरु और पूजा-पाठ परायण विद्वान ब्राह्मणों का खानदान था । यह कुल कभी तो शक्ति का उपासक रहा होगा अब लेकिन पंचदेवता\* का उपासक था । कुल देवता इन लोगों की भगवती उग्रतारा थी । इसलिए रंग-धिरंगे फूलों की आवश्यकता पड़ती ही रहती । किसी ऋतु में फूलों की कमी न पड़ जाय, इस दृष्टि से भी फूलों के अधिक से अधिक भाड़ लगाये जाते रहे होंगे ।

मदार पहाड़ से पंडितजी का पत्र आया था, वहाँ वह नवाहन† भागवत पर बैठ गये थे । भादों में गोड्डा के आसपास किसी गाँव में भागवत का एक परायण और होने वाला था । आसिन की दुर्गा-पूजा के दिनों में भागलपुर का कोई लखपतीमारवाड़ीसप्तशती चंडी का संपुट पाठ करावेगा, कातिक में डुमरिया की रानी साहेबा कातिक महात्म सुनेंगी...टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में खोखा पंडित ने यही सब लिखा था ।

चिट्ठी बँचवा के आदि से अंत तक सुना तो पंडिताइन को बड़ा ही परितोष‡ हुआ । वह भर के बोली—अब बूढ़ा अग्रहन तक आवें तो आवे । इस बार गिरस्ती का सारा भार बच्चों के कंधे पर पड़ा । और तो कुछ नहीं, दुनाई की पढ़ाई में थोड़ी बहुत बाधा होगी ।

होगी ! हो रही है कि ?—रामेसरी ने कहा तो माँ ने साँस खींची ।

ओसारे पर बैठकर दुनाई भुना हुआ चिउड़ा तली हुई टेंगरा मछली

\*मूर्य, गणेश, दुर्गा, विष्णु और शिव । †नौ दिनों तक चलने वाला । ‡परितोष, संतोष, तसल्ली ।

के सहारे फाँक रहा था। आधाभरे मुँह से गलगलाती आवाज में बोला—  
इस बार मैं पास नहीं करूँगा !

—अशुभ बातें क्यों निकलती हैं तेरे मुँह से ?

पंडिताइन ने बेटे को फटकारा।

—तो होठों को सिलाकर गंगा बन जाऊँ ?

तीखे स्वर में पंडिताइन ने फिर डाँट बताई—फिर अलच्छु\* बात !  
क्या हो गया है तुझे आज ?

उड़द का बेसन लगाकर अरुई के पत्तों को लपेट रही थी रामेसरी,  
काट-काटकर चक्का बनाना था और धूप में उन्हें तनिक सुखा भी लेना  
था। माँ की फर्माइश थी, आज रात की रसोई में इसी का निमन बनेगा।  
सो वह पत्तों की डंठल काटती हुई बोली—होगा क्या, गौरी तो कुछ करतं-  
धरते नहीं, सारा काम दुनाई को करना पड़ता है।

गिरिजानन्दन, दुर्गानन्दन, गौरीनन्दन, श्रीनन्दन और यदुनन्दन...  
सभल्ला था गौरी। श्रीनन्दन था दुनाई का नाम और बुदुर का यदुनन्दन।  
बच्चन ( गिरिजा ) समस्तीपुर हाई-स्कूल में संस्कृत पढ़ाते थे। दुर्गानन्दन  
मधुबनी अदालत में किसी वकील का मौहरीर था। गौरी मैट्रिक तक  
पढ़ा हुआ और अब होमियोपैथी के माथे पर अपना हाथ रखने जा रहा  
था। दुनाई टैंथ में और बुदुर मध्यम के द्वितीय वर्ष में था।

बनिहार खोजना, बैलों को खिलाना-पिलाना, खेत में काम की  
निगरानी, काम पर कलेवा पहुँचाना, सुबह-शाम खेती को देख आना—  
किसी काम में गौरी हाथ नहीं बटाता था। उस पर डाक्टर बनने की धुन  
सवार थी। समुराल से हिंदी मैटेरिया मेडिका उठा लाया था। दवाओं का  
छोटा सा एक बक्सा भी कहीं हाथ लग गया। अब क्या था ? छाती और  
पीठ की धड़कन बताने वाली छुच्छी† भर चाहिये थी, बस ! मनीआडर से

---

\*अशुभ, अलक्षण। †स्टेथिस्कोप।

फीस भेजकर घर बैठे डिप्लोमा मिल ही जायगा। प्रैक्टिस अपने हाथ की बात थी। वैद बनना कोई कठिन नहीं लेकिन चूरन और चड़िया तैयार करना भारी भ्रंशट का काम मालूम पड़ा। हटाओ बखेड़ा, होमियोपैथी ठहरी चिकित्सा की रानी...गौरी इसी को सिद्ध करने में लग गया। नतीजा वही हुआ कि खेती-बाड़ी का सारा भार बेचारे दुनाई के कंधों पर आ पड़ा। और वर्ष इन दिनों पंडित खुद मौजूद रहते तो लड़कों पर यह बोझ नहीं पड़ता था।

पंडिताइन विजनी\* में किनारी लगा रही थीं। मईवाला हाथ उठाकर बोलती—कल से दुनाई अपना पढ़ें-लिखें मन लगाकर, देखती हूँ कैसे नहीं गौरी घर का काम करते हैं।

अपने पति के बारे में यह ऐलान मनकर छोटी बहू का मन छोटा हो गया। और तो कुछ वह कर नहीं सकी, खाना के लिए मचलनेवाले टाई साल के बच्चे को रोषभरी भंगी में ठुनका दिया और बोली—खा मेरा कप्पार !

बच्चा रो पड़ा।

उधर से सास बोली—मउगी† का मिजाज सनक गया है ! उठकर लड़के को खाने को देती कुछ सो तो हुआ नहीं दुड्डी में जोर का एक ठुनका‡ दे दिया !

दुनाई नाश्ता कर चुका था। बाहर निकल आया। बुटुर पहले ही निकल चुका था।

गाँव के बाहर मैदान में लड़के गेंद खेल रहे थे। जो गेंद खेलने में भाग नहीं ले पा रहे थे उनकी कबड्डी चल रही थी। तमाशबीन उतने नहीं थे जितने खेलने वाले।

दुनाई को आते देखकर माहे खेल से हट आया। नजदीक आकर

\*पंखी। †औरत। ‡पहली-दूसरी उँगलियों के सहारे हलका घँसा।

बोला—आज कई दिनों से मैं तुम्हें खोज रहा था। बड़ा जरूरी काम है। जल्दी में तो नहीं हो ?

ऐसा कौन जरूरी काम आ पड़ा ?—डुनाई के दिमाग का कल-पुर्ज गार्ड की सीटी के बाद इंजन की तरह छुस-छुस कर उठा। दो महीने हुए, वे आपस में बोले नहीं थे। भेंट हुई हो और जान-बूझकर न बोले हो या एक दूसरे से मुंह फेर लिया हो, बात ऐसी नहीं थी। खेती-गिरस्ती के दिन थे। माहे भी अपने कामों में पिचास\* की तरह पिला पड़ा था। वह सिर्फ मदाना खेतिहर नहीं था। अपनी किसानी से भी गांव के लिए उसने नया आदर्श कायम किया था, नई परम्परा स्थापित की थी। धरती को माहेश्वर ने तन और मन का समूची क्षमता लगाकर पकड़ रखा था। चार कट्ठा माठा† खेत थे उसके पास, ग्वाला की टोली के नजदीक। पिछले तान वर्षा से जमान के उन तीन टुकड़ों पर माहे ने मानो पसीना बहाया होगा, उपज भी खूब हो रहा था—आलू और तमाकू। उन फसलों से दा-टाई सा का सालाना आमदनी थी। यह रकम घर के फुटकल खर्च के लिए काफी हाता। घर के पिछवाड़े जो बाड़ा था उसमें तो चार-चार, पाँच-पाँच फसल उगाता था। उसका रसोई में दाल का खर्च नहा, निचह‡ साग-सब्जा—निचह तामन-तरकारी। भिड़नी (तरोई), रमभिड़नी (भिड़ा) माँटा (अंगन), मूर (मूला), कोबी (गोभी), करंला, अरुई, आल (खरन) आलू, हरा मिर्च...क्या खरीदना पड़ता था उसकी माँ को ? एक्का चाज नहा ! चार-छे थम केला के लगा रखे थे सो उनका भी वश-विस्तार होता ही आया था। धान के अपने खेत दो ही बीघा थे माहे के पास—चालास मन से कम तो कभी नहीं उपजाया उसने, कभी साठ और कभी पचास मन...प्रसंग छिड़ने पर दर्द भरी आवाज में वह कह उठता—सिचाई और निकासी का इतिजाम यदि कांग्रेसी सरकार कर

\* पिशाच, भूत। † ऊँचा और भुसभुसा। ‡ नित दिन, हर रोज।

दे तो इन्हीं चालीस कट्ठा खेतों में १२५ मन धान उपजाकर दिखला दूँ मैं !...काम लेते समय मजदूरों को अच्छा कलेवा देता था । मजदूरी में उसके यहाँ से कभी घटिया किस्म के दाने नहीं दिये गये । एक ब्रैल और एक गाय रखे हुए था, वे अपनी तन्दुरुस्ती के लिए नौगछिया की समूची बस्ती के मवेशी वालों के लिए नमूना थे । हलवाहा, हल और ब्रैल एक दूसरे किसान के साथ भाँज\* में चलता था ।

सो, टुनाई ने सोचा—ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी है कि मांह ग्वेल छोड़कर उससे बातें करने आया है ?

टुनाई ने कहा—जल्दी में होता तो इधर क्या करने आता !

माहेश्वर के होटों पर पुसकान उभर आई, दाँतों की अगली कोर दिखाई दे गई ।

टुनाई का बदन खाली था । माहे की देह पर अधवहियाँ बनियायन थी । दो-एक दिन पहले ही बदली हुई पीली जनेऊ गले से लिपटी हुई थी । कपार पर बाईं ओर घोड़े के खुरका वही सनातन निशान था, बचपन की किसी दुर्घटना का स्मारक ।

टुनाई के कंधे पर मांह ने अपना दाहिना हाथ डाल दिया और ले चला उस मैदान के छोर की तरफ ।

आगे दूब पर बैठ गये दोनों ।

एक दूब नाँच कर मांह ने उसकी दो पोर खोंट ली नाखूनों से, उसे उसने मुँह में डाल लिया । चबाता हुआ बोला—बिससरी के बारे में क्या सोच रहें हो तुम लोग ?

—क्या सोचेंगे ! सोचने और होने में भारी अन्तर है माहे कि नहीं ?

—सो तो हइए है !

\* बारी, सहभाग ।

—तो फिर ?

—आखिर इस भंभट से छुटकारा पाने का कोई न कोई रास्ता तो निकलना ही चाहिये, कि नहीं ?

—नहीं कौन कहेगा इसमें ?

—तब ?

दुनाई चुप हो रहा था। वह क्या जवाब दे माहे को ? परिवार की गति-विधि नियमित करने में अभी उसका क्या हाथ होता है ? कुछ नहीं !

इतना दुनाई को अच्छी तरह मालूम हो चुका था कि त्रिसेसरी का ब्याह अब कोई आसान काम नहीं रह गया है। चतुरानन चौधरी की तरफ से इधर लोगों में यही बात फैलाई गई थी कि वह नौगछिया से शादी कर आये हैं, अगहन में गौना होगा। इस प्रचार का फल यह हो रहा था कि दुनाई के बड़े और मझले भाइयों ने रिश्ते के लिए फिर से जहाँ-जहाँ बातचीत शुरू की थी, बाद को उन सभी जगहों से जवाब का एक बँधा बँधाया गोला छूटने लगा—ज्याही लड़की को दुबारा ब्याह कर अब और कितना कमाएँगे पंडित जी ? जो बात कहीं नहीं हो पाई वह अब नौगछिया वाले करने जा रहे हैं ?.....

बीच में दुनाई किसी काम से दरभंगा गया था। वापस आते समय दरभंगा प्लेटफार्म पर एक आदमी से अकस्मात् परिचय हुआ तो वह मानिकपुर-गढ़िया का निकला। हास-परिहास की मुद्रा में उसने पीछे कहा—चलिए, पान खा आवें बाहर से। आप तो हमारे चतुरा बाबू के कुटुम्ब-नारायण टहरे ! पचास-साठ वर्ष बाद यह रिश्ता हमारे और आपके बीच कायम हुआ है। महारानी जनक-लली\* की अनुकंपा से ही यह काम हुआ समझिए...उसने दुनाई का हाथ पकड़ा और पुल की ओर खींच

---

\* सीता; सीता की जन्मभूमि होने से उधर कुछ लोग बात-बात में साता का नाम लेते हैं।

ले जाना चाहा। दुनाई दुहरे संकट में पड़ गया ! पिता का नाम क्यों बता दिया ? मगर इस पर चुप रह जाना भी बड़बुदबुद होगा और बाहर चलकर इस आदमी के दिये हुए पान के बीड़े स्वीकार करना तो बेवकूफी की हद हो जायगी ! कैसा रिश्ता और कुटुम्बैती\* !...

दुनाई पहले खुद अँभला, पीछे कड़ी आवाज में उस आदमी को भाड़ दिया—भंग तो नहीं पी आये हैं आप ! किसने बताया कि चतुरा चौधरी की शादी हमारे घर हुई है ? मेरे पिता जी उन्हें ले जरूर आये थे पर घर के और लोगों को वह जँचे नहीं। हमारे गाँव के पढ़े-लिखे नौजवानों ने समझा-बुझाकर चौधरीजी को बिदा कर दिया, उधर लड़की की तन्त्रियत एकाएक खराब हो गई थी। कई कारणों से यह ब्याह हुआ नहीं, टल गया।

दाँत चियार कर वह दुनाई का मुँह ताकता रहा थोड़ी देर तक, फिर हँसने लगा ही ही ही ही हू हू हू हू हू हू !

छून भर बाद बोला—चलिए पान तो खा आवें ! छिलका छुड़ाने से बात यह पतली थोड़े हो जायगी ? ब्याह अभी नहीं हुआ है तो आगे हो के रहेगा, आप कि नहीं ?

उस सनकी से बहस करना बेकार था। दुनाई उसकी नजर बचाकर दूसरी ओर जाकर ट्रेन की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया था।

इस प्रकार की बातें गाँव के और कई लोगों को सुननी पड़ी थीं। इस तरह की अफवाहें चतुरा चौधरी के आदमी खूब फैला रहे थे।

दुनाई का समूचा परिवार इससे घबड़ा उठा था। औरत-मर्द सभी हाथ जोड़कर भगवान् से मनाया करते कि चाहे जैसे भी हो बिसेसरी का ब्याह अग्रहन के लगन में अवश्य हो जाय। पंडिताइन ने आँचल पसार कर और मत्था टेककर जोड़ा छुआर‡ कबूला था दुर्गामाई के आगे।

\*सम्बन्ध, कुटुम्बिता। †था। ‡तर्पण बकरा, पाठा।

बच्चन ने सत्यनारायण भगवान की पूजा का संकल्प लिया था। रामेसरी की मनउती थी गंगाजल भरकर पैदल पहुँचेगी और अपने हाथों से बाबा बैदनाथ को नहलाएगी।

कुछ मनउती बिसेसरी की भी थी क्या ?

थी कि ! अवश्य थी !

नहीं भला कुछ कैसे होती ?

तो क्या थी बीसो की अपनी मनउती ?

बिसेसरी की मनउती यही थी कि आने वाले अग्रहन में अगर कोई बीस या बाईस-साला दूल्हा उसके लिए मिल गया और शादी हो गई तो वह चाँदी की छोटी सी खूबसूरत बनुली\* गढ़वाएगी सुनार से, बाँके बिहारी कुँवर कन्हैया के हाथों में थमा देगी...

दुनाई देर तक चुप रहा। वह पारिवारिक मुसीबत के बीसो वाले पहलू पर बार-बार सोचता रहा। यह संकट उससे छिपा हो तो बात नहीं थी। माँ की तन्दुरुस्ती इधर गिर रही थी। बहन के व्रतों-उपवासों की संख्या बढ़ गई थी। बिसेसरी के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ा था इन बातों का...

दुनाई माहे की ओर बीच-बीच में देख लेता था। वर्षा के पानी का रेला दूध की गुच्छियों में छपरिहा† खर के कुछ टुकड़े कभी उलझा गया था, वे अब भी जस के तस उनमें फँसे-अटके पड़े थे। खर का एक छोटा टुकड़ा उठाकर दुनाई ने हथेली पर उसे फिराया, मिट्टी भर गई तो वह उससे कान खोदने लगा।

—कब तक कान खोदोगे ?

दुनाई जवाब में फिर कुछ नहीं बोला। उसकी यह स्थिति देखकर माहे ने तय कर लिया कि अभी नई योजना की भनक दुनाई से कानों में न पड़े तो अच्छा। यह मलहू‡ कुछ का कुछ समझ लेगा।

\*बाँसरी, बंशी। †छप्पर से झड़े-पड़े व गिरे-टूटे। ‡मूल्य, बुद्ध।

—चलो दुनाई, अभी हम लोग कबड्डी खेलें। बातें फिर कभी कर लेंगे। बात कोई खास तो थी भी नहीं...

माहे ने दुनाई का हाथ पकड़ा। दोनों उठ गये।

## तेरह

पंडित का दूसरा लड़का दुर्गानंदन था तो एक मामूली वकील का मोहर्रिर मगर समझदारी उसकी काफी तेज थी। वह ताड़ गया था कि चतुरा चौधरी भीतर ही भीतर बेहद खीझ गया है। बिसेसरी का ब्याह किसी और दूल्हे से न हो, उसकी कोशिश रहेगी। भाव मारकर हम अपनी भांजी को चतुरा चौधरी के चरणों में अर्पित कर दें—मानिकपुरा गढ़िया वाले तो यहीं चाहेंगे !

दुनाई की तरह दुर्गानंदन की भी चौधरी के किसी गाँववाले से भेंट हुई थी। शादी वाली बात दुर्गा ने चुपचाप सुन ली थी। कहने वाले तो ऐसा कहते ही, किसका किसका मुँह-वह मुँदता फिरता ?

पेशा उसका ऐसा था कि रोज सैकड़ों नये चेहरे नजर आते। जान-पहचान भी उसकी खूब बढ़ी हुई थी। पढ़ा-लिखा तो मामूली था, चतुर खूब था। पचाढ़ी महंथ के विद्यालय में रहकर और वैरागी पंथ का खाना खाकर दुर्गा ने व्याकरण की मध्यमा पास की थी। एक सहपाठी\* का बड़ा भाई मधुवनी कोर्ट में किसी वकील का मोहर्रिर था। वह एक बार अपने भाई से मिलने आया तो दुर्गानंदन की बातों से बड़ा ही प्रभावित हुआ। घर की स्थिति से परिचित होकर उसने दुर्गा से कहा—क्या करोगे शास्त्री और आचार्य की परीक्षाएँ पास करके ? अब तो जमादार पंडितों को वर्ष†

\*साथ पढ़नेवाला। †हर साल एक मुश्त दी जानेवाली भिक्षा की रकम जो कि बड़े दरबारों में पंडितों के नाम बंधो होती थी।

भिच्चा भी नहीं देते ! जहाँ के लोग पहले भागवत की कथा सुनते थे, वहाँ वाले नजदीक के शहरों में आकर सिनेमा देख जाते हैं । पंडितों की क्या कमी है ? गेहूँ सस्ता होता है तो घर-घर सतनराएन भगवान की पूजा होती है । सो, पंडित सस्ते हो गये हैं तो ज्ञान से लोगों की अरुचि हो गई है । चलो, तुम मेरे साथ महीना भर रहो, फिर देखना । अपना खरच छोड़कर बीस-पच्चीस तो अगले ही महीने बचाने लगोगे, हाँ !...यह सुनते ही दुर्गानंदन की मगजी उलट गई । घर का हाल खस्ता था ही । पूरा दिन पूरी रात वह सोचता रहा—क्या बुरा है, खा-पीकर पन्द्रह रुपैया भी याद हर महीना घरवालों को वह देने लगे तो यह भारी काम होगा । जिस परिवार में पन्द्रह प्राणी हों खाने वाले और कमाने वाले हों बस दो जने उसे भगवान ही सँभाले तो सँभाल ले जायँ ! आदमी के बूते की बात नहीं है यह...अगले ही दिन दुर्गा अपने सहपाठी के बड़ भैया के डेर पर पहुँच गया और तब से वह मधुवनी में डटा था । खा-पीकर तीस-पैंतीस बचा लेता था, कभी-कभी चालीस तक । दो वर्ष हो रहे थे उसे इस पेशे में, अब तो खैर फर्कट हो गया था । मुख्तार का हाता कूद कर वकील के हाते में आ चुका था ।

दुर्गानंदन का विश्वास पक्का हो चला कि यह काम बाबू ( पिता ) और बच्चन से नहीं होने का । बाबूजी पैंसठ से ऊपर की उमिर के हो गये, जमाने की रफ्तार को पकड़ पाना उनके लिए एकदम असंभव है । भइया टहरे ठेठ पड़िताऊ ढंग के आदमी । उनकी भी अकिल 'गजः-गजौ-गजाः' और 'गच्छति-गच्छतः-गच्छति' से आगे नहीं बढ़ पाती । गौरी अभी बछेड़ा है । दुनाई और बुदुर छोटे हैं...तो फिर बिसेसरी का ब्याह कैसे होगा ? ऊँ हूँ ! दुर्गानंदन को स्वयं मुस्तैद होना पड़ेगा अब । अगले अग्रहन में यह काम जरूर हो जाना चाहिये ।

दुर्गानंदन नई उमर के लोगों पर टोह की निगाह रखने लगा । अंग्रेजी

पड़े लड़के कीमत में छेत्तर\* के पट्टे को मात कर रहे थे, यह तो उसने सौराट में अपनी आँखों देखा था। साधारण पढ़ा-लिखा हो और डेढ़-दो बीघा जमीन का किसान हो, मुखड़ा अच्छा हो और उमिर पच्चीस से जास्ती न हो...बस, अपने तो ऐसा लड़का चाहते हैं ! दस-बीस रुपया देना भी पड़े तो भी ऐसे युवक को उठा लावेगे।

—बाप और भाई की राय नहीं लोगे ?

—और ऐन मौके पर लड़के का गार्जियन भड़क गया तो ?

—तुम्हारे दरवाजे पर फिर कौन अपनी इज्जत गँवाने जायगा !

—दिगंबर और माहे वगैरह से क्यों नहीं इस काम में मदद लेते हो ?

—अरे हाँ, इनसे हमारी क्या दुश्मनी ! उस रोज दिगंबर और माहे ने जो कुछ किया सो अपने लिए थोड़े किया ?

—गाँव भर की नाक कट रही थी, साबित रह गई !

—दिगंबर और माहे हमारी वैसेसरी के लिए कुछ न कुछ जरूर सोच रहे होंगे, कि नहीं ?

—सोच रहे होंगे कि !

दाहिनी कनपटी के ऊपर पीतल की घिसी निब वाला उखड़े रंग का होल्डर खोंसे बाबू दुर्गानंदन मोहररिं यही सब सोच रहे थे।

भीतर दोएम मुंसिफ का कोर्ट।

बाहर बरामदे में खचाखच भीड़। दो-ढाई हाथ अंदाज रास्ता के लिए जगह छूटी हुई।

बरामदे पर लंबाई में दोनों और मोहररिं और स्टांप बेचनेवाले अपनी-अपनी दरी बिछाये हुए। बीच-बीच में कहीं एक-आध छोटी तख्तपोश भी। किसी पर लुढ़की स्याही का धुंधला निशान तो किसी के छोर पर बारीकी से खची हुई चाकू की छोटी-छोटी घनी लकीरें—मुक्किल या

---

\*हरिहर क्षेत्र ( सोनपुर, बिहार ) हाथियों का सबसे बड़ा मार्केट है।

गवाह ने तम्बाकू के सूखे-बड़े पत्ते को खैनी बनाने के लिए काटा होगा, पास ही चूना का भी चेन्ह\* मौजूद था । अपनी छाती पर कत्था-चून से लिमड़ी हुई उँगलियों का छापा लिए हुए पावे पान के शौकीनों को फिर भी घूर रहे थे । शोर-गुल और मिश्रित ध्वनियों की एक अजीब गूँज अदालत को अनाज और तिलहन की मंडी बनाये हुए थी । सियाराम-कीर्तन, बिदेसिया नाच, हनुमान चलीसा, भरथरी चरित्र, नागलीला, दान-लीला, किस्सा तोता-मैना, किस्सा सबाचार यार, सत्यनारायण कथा, दुर्गा सप्तशती, श्रीभद्रगवद्गीता, सुन्दरकांड रामायण ( तुलसीदास ), मैथिल श्राद्ध-विवाह पद्धति, जतरा-सगुन विचार, पहाड़ा ( बाराखड़ी )... वगैरह बेचने वाले दो-तीन छोटे बुकसेलर जूट के छोटे टाट पर अपनी-अपनी दूकान सजाये बैठे थे । दो-एक ऐसे भी दूकानदार थे जो चाकू-कैंची, अलीगढ़ के ताले, मुइयाँ, बटन और धागों की गोलियाँ जैसी चीजें फैलाये हुए थे । बीचोबीच रास्ते के लिए जो जगह छूटी हुई थी, उस पर से तरह तरह की सूरत-शकल वाले गुजर रहे थे । सामने से दाढ़ी-मूँछ सफाचट या फिर बड़ी-बड़ी मस्त्रियों जैसी मूँछों वाले मगर पीछे चुटिया की दाईं-तीन तोला गाँठ लटकाये हुए, तेल में चपचप करती हुई छँटे बालों की सत-महला पट्टियाँ और नाक पर से लेकर कपार की ऊपरी छोर तक पीली मिट्टी का लम्बा उँगलिया रेख और गले में सरसों जैसे बारीक दाने वाली वैष्णवी कंटी; दाढ़ी नहीं लेकिन मूँछें मशीन से छँटी हुईं और कपार में सेदुर का गीला टीका; नेपाली बकरी जैसी पतली-लंबी दाढ़ी, मूँछें छँटी हुईं और दुपलिया टोपी माथे पर; चोटी विहीन, खाली सिर, दाढ़ी मूँछ सफाचट—पैट लेकिन सबके थे । बाकी कोई चपकन धारी तो कोई कोटधर... ये लोग मधुबनी-अदालत के वकील थे । मुस्तारों की आमदनी बहुधा वकीलों से कम हुआ करती है, इसका असर उनकी शान-शौकत पर पड़ता है । यहाँ भी मुस्तारों का वही हाल था ।

\*चिह्न, निशान ।

कि इतने में एक मोकिल\* आकर दुर्गानन्दन से अपने मुकदमे की अगली पेशी का दिन पूछने लगा ।

एक बार पूछा, दो बार पूछा । तीसरी दफे मोकिल भभा कर हँस पड़ा ।

जोर की हँसी ने मोहर्रिर का ध्यान भंग किया तो वह बोला—क्या पूछते हैं ?

मोकिल अघेड़ उमर का गोरा-छुरहरा मुसलमान था । उसने मुसकुरा के कहा—अपने मुकदमे की अगली पेशी की तारीख मैं किससे मालूम करूँ । यहाँ तो डूबा हुआ है लैला की याद में मजनू...हः हः हः हः

नर्हा शेख जी !—दुर्गानन्दन भेंप गया ।

—तो क्या सोच रहे थे आप ?

—एक घरेलू भमेला आ पड़ा है, शेखजी !

—तिरिया चरित्तर का भमेला न ?

—मखौल नहीं शेख जी, अपनी कसम !

मुक्किलों से मुहर्रिरों का हास-परिहास कोई अनहोनी बात तो थी नहीं । यही तो चीज है जिससे अदालत की मनहूसी फटती है । पेशेवर एक-रसता को जिंदगी का रंगीन और जायकेदार मिक्श्चर इस तरह कभी-कभी खुशगवार न बना ले तो दुनिया नरक ही नरक रह जायगी ।

दुर्गानन्दन की चेतना ने स्फूर्ति हासिल की शेख की इस टॉनिक से । पाकिट से गीता प्रेस वाली डायरी निकाल कर वह बोला—२० अगस्त, सोमवार...और जरा पहले आ जाइएगा । वकील साहब को उस रोज बहुत सारे काम करने हैं; चार केसों में उस तारीख को उनकी बहस होने वाली है...और हाँ...

शेख ने एक चवन्नी अपने मोहर्रिर की मुट्ठी में गोंज दी ।

\*मुक्किल ।

आज के लिए थोड़े कहा है ?—मोहर्रिर बोला और मुसकुराने लगा ।  
—तो ?

—अजी, अगली पेशी के दिन मे मेरा मतलब था ।

—समझ गया ।

—हूँ ! खलास बैटरी से काम नहीं चलेगा उस रोज ! मसाला भरा रहे, हाँ शेख जी, समझे न ?

शेख का चेहरा भारी हो उठा तो मोहर्रिर की टोन बिलकुल बदल गई—अजी, जास्ती नहीं । बीस-पच्चीस में उस तारीख का सारा काम निबटा दूँगा, आप कुछ फिकिर मत कीजिए ।

—अभी तो समन तक नहीं पहुँचा है गवाहों के पास !

—यह बात है ?

—और नहीं तो ?

—निकालिए ए' गो रुपइया ! सिरिस्तेदार और समन ले जाने वाला सिपाही—दोनों को अठन्नी और चवन्नी चटाना पड़ेगा, मैं कई बार जा जाकर उन्हें ताकीद करूँगा । तब कहीं समन बरामद होंगे और गवाहों तक पहुँचेंगे । कितनी दौड़ धूप मुझे करनी होगी ! चाहिये तो बेटे रुपइया, मगर निकालिए आप एक ही कलदारम्...

—मेरे पास तो अब लारी का भाड़ा भर रह गया है !

—ऊँ हूँ ! फिर कैसे होगा ?

—तो किसी पड़ोसी या जान-पहचान के आदमी को देखता हूँ... दुर्गा बाबू, आप ही कोई इंतजाम कर लीजिएगा, अल्ला की कसम ! मैं दे दूँगा पीछे...

—नहीं जहदल्ली\* शेख, इस बखेड़े में मैं नहीं पड़ूँगा । किस-किस मोकिल के लिए मैं उधार-पैचा माँगता फिर्लूँ और असूल-तहसील का एक

\*जाहिद अली ।

नया खाता खोलूँ ? न हो तो आज रहने दीजिए, चार रोज बाद आइएगा, काम हो जायगा ।

शेख उठा भख मारकर आखिर !

दुर्गानंदन भी उठे । ऊपर सीध में उठाकर बाँहों को भटका दिया, साँस को थमका कर समूचे बदन को कड़ा किया और जँभाई ली । फिर पान की दूकान की ओर बढ़े ।

तिल्लें टेंगे आदमकद आइने में साँवली सूरत का जो चेहरा दिखाई दिया उससे दुर्गा को अचरज हुआ ।

—अरे, यह तो दिगंबर है !

नजदीक आकर दुर्गानंदन ठमक गया । पान के चार बीड़े मुँह में कोचकर ऊपर से जर्दा डाल के दिगंबर ने निचली जेब से चमचमाती अठन्नी निकाली । उधर नजर पड़ते ही तंबोली मुसकुराया, होठों को झोढ़ा करके इन्कारी मुद्रा में उसने भारी-सा माथा हिलाया ।

—नहीं है चेंज !

—वाह, क्यों नहीं है !...अकस्मात् पीछे से एक हाथ बढ़ आया आगे, तंबोली के सामने भकाभक पीतल मढ़ी छोटी चौकी पर एक धूमिल मगर अनघिसी दुअन्नी रख दी गई...खट्ट !

दिगंबर ने गर्दन घुमाई, दुर्गानंदन से आँखें मिलते ही मुँह से निकला—पर्नामि दुर्गा बाबू !

—दिगो, यहाँ कैसे रे ?

—गिलेसन\* में कुछ सामान लेना है ।

—क्या क्या ?

—उड़द, लाल मिर्च, काली मिर्च, जीरा...

\*ग्रियर्सन मार्केट ( मधुबनी, जि० दरभंगा, बिहार )

—अब आज नहीं जाने दूँगा, कल सबेरे खा-पी के अपना चले जाना !

—अदेशा के मारे माँ जो परान\* तेआग देगी ।

—नह र दिगो ! राम के लिए कौसल्या की जान जब नहीं निकली तो तेरो माँ का क्या होगा ?

वह कहने-कहने दुर्गानन्दन को भी हँसी आ गई और दिगंबर के रंगे हाँड दुहरे-तिहरे हो उठे ।

तबोचो तब तक दुर्गा को भी पान दे चुका था ।

दुर्गानन्दन ने दिगंबर के कंधे पर अपनी एक बाँह डाल दी और चलते-चलते गाँव घर के हालात मालूम करने लगा...गोनउड़ा की दादी मर गई थी...चोर फतूरी काका की बाड़ी में से तीन कटहल तोड़ ले गये थे...रामेसरी को हल्का-सा बुखार आया था...गौरीनंदन लहेरिया सराय से होमियोपैथी की दवाएँ खरीद लाये हैं...

उस रोज सनीचर था, अदालत कुछ पहले ही उठ गई । अपनी जगह पर आकर दुर्गानंदन कुछ देर दिगंबर से इधर-उधर की बातें लड़ाता रहा । इसी बीच वह जहदल्ली शेख चुपचाप एक रुपइया दे गया । कुछ कहने लगा था कि दुर्गानंदन ने नजर मारकर इशारा किया—सब ठीक हो जायगा अब; और बाईं हथेली उठा—फैलाकर बेफिक्र रहने का आश्वासन दिया ।

—इसी के लिए मैं रुका था दिगो !

—तो चलिए न अब !

दुर्गानंदन ने बस्ता लपेटा । अलग एक टटऊ† घर में कुछ बेढंगी सन्दूकें पड़ी थीं, एक को खोलकर उसमें अपना बस्ता रख दिया । दफ्तियो वालो छोटी फाइल साथ रख ली । बोला—अब चलो भइया !

\*प्राण त्याग देगी; जान दे देगी । †भीत की जगह बाँस की फट्टियो की बनी आड़ वाले ।

सूड़ी स्कूल के पास दुर्गानंदन के वकील साहेब का डेरा था। बैठक वाले बाहरी हिस्से में दो कोठरियाँ थीं। एक पर दुर्गा का कब्जा था। यो तो इस कम में भी फूटे शीशों वाली दो बूढ़ी आलमारियाँ थीं, उनमें बेधे-बेबँधे कानूनी पोथे अव्यवस्थित रूप में पड़े थे। फिर भी दुर्गानंदन ही इस कोठरी का सर्वाधिकारी था क्योंकि ताला लगाकर दो-दो तीन-तीन दिनें मधुबनी से बाहर रह सकता था।

बरामदे में कुछ कुर्सियाँ पड़ी थीं। बाजार के लिए कोठरी से बाहर निकलते समय दुर्गा ने हाथ बढ़ाकर कहा—यहाँ, दिगो, वकील साहेब बैठते हैं।

बाजार जाकर दोनों सौदा कर आये, दुर्गा ने नहीं माना...आग्रह-पूर्वक हलवाई की एक दूकान में ले आकर जब बैठा ही दिया तो बाबू दिगंबर को नाश्ता करना पड़ा। ठकही कचौड़ियाँ मुरमुराते हुए दिगो ने कई बार कहा—क्यों इतना खर्च करते हैं दुर्गा भैया ?

—अरे, तुम क्या रोज आते हो ?

ऊपर में चार-चार बीड़े पान के।

ऐसा नहीं कि पंडित दुर्गानंदन भा ने साथ नहीं दिया हो ? साथ दिया और हँसते-खेलते !

लौटकर डेरे पर आये। बातें होती रहीं फिर बीच में उठे दोनों जने और जाकर खा आये बूधन भा के होटल से। दुर्गा इस होटल का माहवारी मेम्बर था ही। दिगंबर मल्लिक थे गेस्ट।

बरामदे में अपनी कोठरी की ओर ही कमबल बिछाया गया, फिरदरी।

—तकिया एक है तो क्या हुआ ? मैं अपने लिए कपड़े डाल कर भोले को ठीक कर लेता हूँ, तुम तकिया पर माथा रख कर आराम से सो जाओ !

—नहीं, दुर्गा भाई ! ऐसा भी कहीं होने का ?

दोनो अगल-बगल लेटकर देर तक बातें करते रहे।

आज बिसेसरी के बारे में चिंता के दो पृथक् सूत्र एक जूट हो गये थे । आगे क्या रास्ता है, इस पर खुलकर गप्प हुई थी ।

अगहन में जैसे हो बिसेसरी की शादी होगी ही । बिसेसरी के लायक दूल्हा नहीं मिलेगा ! मिलेगा क्यों नहीं ? और चतुरा चौधरी ? अरे, उस दुमधिसे गीदड़ की बात छोड़ो । वह भूँक-भूँककर अपने माँद में सर पटकता रह जायगा...

## चौदह

आसिन का महीना !

पितरपच्छ के दिन आ गये थे ।

आज मातृनवमी थी । अपनी-अपनी माँ, नानी, सास, दादी और परदादी के निमित्त सबको एक-एक ब्राह्मण चाहिये था । इतने ब्राह्मण कहाँ से आवें ?

माहेश्वर को नौ घरों में न्यौता था । बूलो को सात घर में । गौरी-नन्दन, दुनाई, बुदुर—किसी को भी पाँच-पाँच से कम घरों में नहीं जीमना था ।

पंडिताइन ने अपनी नानी, सास और सतिया\* सास के लिए चार ब्राह्मणों को न्यौता दिया—चारों छोकरे बाभन थे क्योंकि सयानी मूर्तियों के लिए भोज्य वस्तुएँ काफी और अच्छी अपेक्षित होतीं । शास्त्र में कहीं ऐसा तो लिखा है नहीं कि भूख से कुलबुलाते अघेड़ ब्राह्मण के समक्ष तीन-तीन पत्तलों को खाद्य-सामग्री एक ही पत्तल पर परोस देनी चाहिए अन्यथा पितरों की तृप्ति नहीं होगी । गले में जनेऊ रहनी चाहिये, फिर उमर यदि पाँच की भी हो और जन्म हुआ हो ब्राह्मण वंश में तो देवता

\*सौतेली ।

और पितर लाख भुख मारें, आपको ब्रह्मभोज में सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार है ।

बूलो की भाभी ने अपनी माँ और सास के निमित्त पकी उमर के दो ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया था और ताकीद कर दी थी कि वे पहले उसी के घर जीमेंगे । जिमाये हुए ब्राह्मण बटुकों को जैसे-तैसे जिमाकर पितरों को टगना बूलो की भाभी ने कहाँ सीखा था ? नहीं सीखा था !

रामेसरी ने अपनी सास के निमित्त फतूरी काका को न्यौता दिया था । वह चर्खा चलाकर दस-चारह रुपये महीना अपना कमा लेती थी । अन्न-वस्त्र के लिए अभी माँ-बाप जीवित थे । लड़की के लाड़-प्यार के लिए और दूसरी जरूरतों के लिए सूत वेचकर हासिल की हुई यह रकम काफी थी । अपने पति और सास की बर्खा के अवसर पर वह सात या पाँच ब्राह्मणों को अवश्य जिमाती । ब्राह्मणों की संख्या भले थोड़ी रहे, सामग्री मगर अच्छी होनी चाहिये—इस ओर रामेसरी बराबर सतर्क रहती । हाँ, माँ-बाप और भाइयों को वह उनकी धारणाओं के मुताबिक ही चलने देती ।

छोटी बहू के नानी नहीं थी, सो उसके नाम पर फतूरी का नौ-साला लड़का पित्तो जीमने आया ।

चंद घण्टों के अन्दर ही जिन्हें कई घरों के पितरों को अकेले-अकेले तृप्त करना था वे उस रोज सबेरे ही नहा-धोकर और चन्दन-टीका लगा के तैयार हो गये थे ।

माहे रात से ही पेट को हलका किये हुए था, उसे नौ पत्तलों से निबटना था न ! मुखिया के घर चूड़ा-दही से पितरपच्छ के ब्रह्मभोजी मैदान में वह जो कूदा सो बाबू नीलकंठ मल्लिक के यहाँ पूड़ी-तरकारी का परायण करता हुआ बाहर निकला... बीच-बीच में कहीं भात-दाल-तरकारी, कहीं चूड़ा-दही और कहीं फिर भात-दाल, तरकारी और कहीं फिर चूड़ा-दही ! आधा पहर दिन उठे पहला पत्तल सामने आया था और

आखिर दो बजे । बाकी दिन भर वह बूलो के दालान पर चित-पट होता रहा और पानी पीता रहा ।

बूलो का खुद का भी यही हाल था । माहे की माँ के यहाँ से शुरु करके परमानन्द पाठक के घर उसने अन्तिम बार हाथ-मुँह धोये थे । माहे की माँ को भी खिलाने-पिलाने का आवेश\* काफी था और पाठक लोगों का खान-पान तो गाँव भर में मशहूर था ही ।

दिगो के दालान पर उस रात पचीसी† खूब जमी थी । माहे और बूलो नहीं आ सके थे, बाकी सभी आये थे दिगो और गौरी दोनों गोधिया‡ थे, दो बार हारे थे और एक बार इनकी गोटियाँ लाल हो गई थीं—जीत गये थे ।

दुर्गानन्दन और दिगम्बर ने मधुवनी में जाने क्या-क्या बातें की थीं कि आपस का तनाव बिल्कुल हट गया था अब । जन्माष्टमी की छुट्टी में दुर्गा घर आया और बूलो के घर जाकर बड़ी देर बाद बाहर निकला था । अपनी माँ और बहिन से भी उसने काफी एकांती× की थी ।

दूल्हा जब से भगा दिया गया था तब से दिगंबर-बूलो-माहे आदि के परिवारों से पंडित-परिवार का मेल-जोल एकदम टूटा हुआ था सो अब एकाएक जुड़ गया—मुखिया और फतूरी वगैरह इसे उच्चाटन और वशीकरण का कोई तांत्रिक प्रयोग समझने लगे या क्या सो वही जानें ! हाँ, अचरज के मारे आँखें उनकी कपार पर जरूर उठ आई थीं । मुखिया ने

\*जतन, भावुकता । †चौपड़ की तरह का एक खेल—आठ कौड़ियों के सहारे खेला जाता है; खाने बिल्कुल चौपड़ के, गोटियाँ चार होती हैं । मुट्ठी में लेकर भाँजने पर चित और पट पड़ने वाली कौड़ियों के क्रम से लोग अपनी-अपनी गोटी की चाल बढ़ाते हैं । खेलने वाले भी चार—आमने-सामने दो-दो जो गोधियाँ ( गोइयाँ साथी ) कहलाते हैं... ‡गुइयाँ, जोड़ी । × शुफ्तगू

दो दिन बाद, पोखर के पथराही चाट पर गीली धोती फेरते हुए फतूरी की ओर भोरे-भोर आँखें फाड़-फाड़कर देखा। खुद वह दिसा-फराकत\* हो आया था। हाथ मटिया चुका था, अब सिलवर का बनारसी लोटा मिट्टी से मल रहा था। घाट के नगीच पानी के बलुई कछार पर एड़ियों के सहारे बैठा था। बाईं ओर गर्दन घुमा के थूक फेंकी और बोला—  
खोखा पंडित का समूचा घर बूड़ गया फतूरी काका !

—कहते क्या हो ?

फतूरी चौंके। हथेलियों में फुर्ती आ गई तो कमर से सूखी धोती का कोर-किनारा चट्ट से गोलाई में लपट गया और सड़ाक से लॉग मानो आप ही पीछे की ओर होकर खुंस गई।

धोती का बाकी हिस्सा उन्होंने पीठ पर डाल लिया तो वह गर्दन का चदरऊ घेरा बन गया।

भुककर गीली धोती पर हाथ डालते हुए फतूरी ने मुखिया को फिर टोकारा दिया—ऊँ ?

घुटने भर पानी में जाकर मुखिया जोर-जोर से लोटा खगार रहा था और फतूरी काका बीच में टूटे हुए श्लोक कड़ी को फिर जोड़ रहे थे।

प्रथमस्तु महादेवो द्वितीयस्तु महेश्वरः !

तृतीयः शंकरः प्रोक्तश्चतुर्थो वृषभध्वजः ॥

पंचमः कृत्तिवासाश्च...

मुखिया ने ताबड़तोड़ कुत्तियाँ कीं, वहीं पानी के अन्दर ही गर्दन को तनिक दाहिने ओर घुमाकर—पानी लेकिन चुल्लू से सामने की तरफ से लेता था।

पानी से बाहर निकलकर वह गमछे से हाथ-मुँह पोंछने लगा।

\* हगने के लिए जंगल-मैदान या खुली जगह, गाँव के बाहर की बिना बस्ती की जमीन।

फतूरी तब तक पानी के अंदर जाकर धोती को खंगारने लग गये । पाठ का एक टुकड़ा खतम हो गया और धोती भी निचो ली उन्होंने !

—क्या कह रहे थे तुम मुखिया ?

—खोंखा पंडित का पलिबाड़\* बूड़ गया !

—कुछ कहबो करोगे कि ?

—वह छउँड़ी† फिर गाँव भर में कुदान मारने लगी फतूरी काका !

—कौन हो ? बिसेसरी ?

—तो और कौन !

—चार महीने हुए, मैंने तो उस लड़की को नहीं देखा है कहीं आते-जाते ।

—आपको, फतूरी काका, घर की खबर तो रहती ही नहीं फिर गाँव का हाल क्या जानने गये आप ?

इस पर फतूरी काका तनिक बिलमे ।

ऊपर से ताजी-चिकनी मिट्टी ले आये कौड़ी भर, लोटा को हलके हाथ से मांजते हुए कहा—जाने भी दो बासकी नाथ, धी-बेटी ठहरी । नानी ने या मामी ने किसी काज से इधर-उधर दौड़ा दिया होगा । बहिरिनी‡ किसके घर क्या काम करती है ? गया वह जमाना बाबू, मुट्ठी भर जूठे भात की आस लगाये हमारी-तुम्हारी देहरी के सामने अब कौन निगोड़ी खड़ी रहती है ? और, फाजिल भात ही अब किसकी हँडिया में पड़ा रहता है ? बोलो न ?

—सो मैं कहाँ कहता हूँ कि नहीं, मुदा...

बात को बीच ही में निगलकर मुखिया कछार से ऊपर जा पहुँचा और मोहाड़× पर एड़ियों के सहारे बैठ गया । साहड़ की हरी-ताजी

\* परिवार । †छोकरी । ‡गृहदासी । ×भिड़, तालाब या चमच्चा का बंध ।

छरहरी टहनी तोड़ लाया था सो वहाँ पड़ी थी। अंटी से चाकू निकाली जो कि अपनी नकासत व तेज धार के लिए मौजा नौगछिया में मशहूर था—छोटी सी चमचम करती हुई रेजिस चाकू ! पहले उसकी फली खोलकर धार को धोती के खूँट से पोंछा, फिर दतवन बनाने लगा। अपनी इस चीज पर हाथ पड़ते ही मुखिया को कलकत्ता की याद हो आती थी। दो साल पहले माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगनाथ की जतरा कर आया था, लौटते समय दो रोज कलकतिया हवा खाई थी। यह चाकू वहाँ डेढ़ रुपइया में ली थी...

एक हाथ में भीगी-निचुड़ी धोती, दूसरे में पानी-भरा लोटा सँभाले फतूरी भी घाट छोड़कर ऊपर आये। तनिक ठमक गये।

—ओर, क्या बात थी ?

दाँतून चचाता हुआ मुखिया बोला—रामेसरी माहे की माँ से पहर-पहर गप्पें लड़ाने लग गई है। मानिकपुर मढ़िया वाला बुड्ढा जब से मुँह की खाकर गया तब से इन लोगों में बोल-चाल, मेल-जोल सब बंद था। अब एकाएक रात-राती\* यह क्या हो गया फतूरी काका कि गंगा-जमुना की धार एक ही नहर में आकर बहने लगी है फिर ?

—क्या बुरा है ! तुम्हें इसमें पर्पंच की गन्ध तो नहीं लग रही है ?

हतप्रभ होकर मुखिया ने आँखें नीचे की ओर कर लीं तो फतूरी ने घर का रास्ता पकड़ा।

तो, उतनी बड़ी दुर्घटना के तीन ही महीने बाद विसेसरी फिर टोला-मुहल्ला में कुदान भरने लगी थी ?

अरे, कुदान भला क्या खाकर भरती बेचारी ! दरभंगा की महारानी के कोख से तो नहाँ पैदा हुई थी वह; या कि हुई थी ?

\* राती रात।

नहीं, बीसो\* बेचारी एक गरीब घर की पितृहीन लड़की थी जिसे निठुर गोतियों ने अपनी विरासत से महरूम करके दूर—बहुत दूर खदेड़ दिया था, बदनसीब नाना-नानी की दरिद्रता के दहकते हुए अग्रिकुंड में धकेल दिया था।

इस उमर में वेफिक्र होकर कुदान वह भरे जो हँसी-खुशी में दमकते चेहरो वाले खानदान में पैदा हुआ हो... उसी में पला-पुसा हो या फिर जिस छोकरी का बाप मिनिस्टर हो कहीं का या फिर लखपता-करोड़पती मारवाड़ी हो...

त्रिसेसरी या उसकी बेवा माँ रामेसरी के लिए कुदान भरने की कल्पना तब तक एक अमंभावित स्वप्न था।

हाँ, त्रिसेसरी दो-तीन जगह अब जरूर जाने लगी थी। तग्याई की सहज चुस्त चाल अगर किसी खूबसूरत की निगाहों में खटोते तो इसमें भला अबोध त्रिसेसरी का क्या कगूर?

खंजन के घर जाती थी, भूलों की भाभी का आँगन फिर उसकी मुसकानों से धुलने लगा था और कभी-कभी तिरपित साहु की दूकान भी जाना पड़ता था। बस एतद्धि रामायणम्†!

खंजन उसकी मुँह लगी और हमदर्द सहेली थी। आयु में चार महीने छोटी। क्वाँरापन उसका भी अब तक टटका‡ था। वह परमानन्द पाठक की भतीजी थी। पिछले जेठ में ठीक दूल्हा आने के दिन-दुपहर के वक्त उसे बुखार आ गया था। सो, अब बीसो उसके घर आने-जाने लगी थी।

बूलो की भाभी के घर चउड़-चन× के दिन ढाई-तीन महीने बाद

\* त्रिसेसरी, बेचारी। †इतनी भर रामायण है! बाकी कुछ नहीं! ‡ताजा, तात्कालिक। ×भाद्र शुक्ल की चौथ, नैवेद्य-निवेदनपूर्वक भादों की चौथ के उगते चाँद को देखने का त्यौहार।

वह नई थी। कितनी खुश हुई थीं भाभी ! पकवान छानना छोड़कर उठ आईं और कसके बीसो के गाल चूम लिये थे, एक नहीं अनेक बार ! और उधर कड़ाही में पक रहीं पुर्कियाँ लहक उठी थीं; धुआँ उठने लगा था उनमें !!

## पन्द्रह

दिगंबर का ननिहाल—पदुमपूरा—खजउली इसटीशन से कोस भर पच्छिम था, पक्का कोस नहीं कच्चा कोस...डेढ़ माइल का फासला था।

ऐसे तो छूटे-छूमाहे दिगो को पदुमपूरा जाना ही पड़ता था क्योंकि नानी संग्रहणी का शिकार थी बहुत दिनों से। उनके लड़के थे तीन मगर लड़की यही एक थी—दिगंबर की माँ मात्र, सो भी पहली संतान। नाना अथबल\* हो चुके थे, आधा लेटे-लेटे दिल-दिमाग की खुरचन कागज पर उतारा करते थे। इधर पंडिताऊ ढग पर नाटक लिखने की धुन सवार थी “ललित किशोर” जी पर, पौराणिक कथानकों का आधार लेकर अब तक आप अठारह रूपक तैयार कर चुके थे। नाना और इस नाती में खूब घुटती थी। घंटों बैठकर दिगंबर सूत्रधार—नट-नटी-विदूषक के कथोपकथन सुना करता नाना के मुँह से। फुलिसकेप साइज का बादामी कागज : सौ-सौ पेज की दशियों कापियाँ: ब्लू ब्लैक स्थाही और पीतल की मोटी निब की मुडौल और पुष्ट लिखावट में बड़ा ही भव्य—अत्यन्त मनोरम लगता था दिगंबर को यह सब देखने में। नाना की यह साधना किशोर नाती के रोम-रोम में स्फूर्ति का संचार करता था। सुनाते-मुनाते ललित किशोर जी लेखक की मर्यादा का उल्लंघन करके कब नाटकीय परिधि में अपने स्वरोँ और मुद्राओं को दाखिल कर लेते, पता नहीं। यदा-कदा बल्कि बहुधा

\*विलकुल असमर्थ, नाताकत, अस्त-बल।

योग्य आगंतुकों को वह अपनी ये कृतियाँ बाँच-बाँचकर आग्रहपूर्वक सुनाया करते। इससे हुआ यह था कि अधिकांश कथोपकथन उन्हें कंठस्थ हो गये।...यह सब बुढ़ऊ के लिए भी मामूली मनोरंजन ही था।

दिगंबर के तीन मामा थे। एक जिला सहर्सा में किसी हाई स्कूल का हेड मास्टर था, एक मुक्तापुर की जूट-फैक्टरी में असिस्टेंट एकाउंटेंट और तीसरा मैट्रिक पास कर चुकने पर जो खेती-गिरस्ती में जुता सो अब घर का मुखिया बन बैठा था।

नानी थी, नाना थे, तीन मामियाँ और उनके सात बच्चे थे, एक नौकरानी थी, एक चरवाहा था—सबसे ऊपर परिवार-भर की देख-रेख करने वाले बाबू जैनंदनलाल दास तो थे ही। यही दिगो के 'छोटका मामा' थे।

परिवार के महामुखिया बाबू श्री गुणवंतलाल दास “ललित किशोर” अब घर के किसी काम में दखल नहीं देते थे। स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ, श्रीमद्भागवत, देवी भागवत, कृत्तिवासका बँगला-रामायण, काशीराम दास का बँगला महाभारत, मासिक कल्याण, सूरसागर, विनय-पत्रिका, ब्रज-माधुरीसार...और अपनी साहित्य-साधना...वह निष्काम कर्म के कायल थे। अपनी कृतियों के पुलिंदों की गठुर को देख-देखकर आप ही पुलकित होते और बुदबुदा उठते :—

कृष्णाय वासुदेवाय  
हरये परमात्मने ।  
प्रणतक्लेश नाशाय  
गोविंदाय नमोनमः ॥  
नमो ब्रह्मण्यदेवाय  
गोब्राह्मण हिताय च ।  
जगद्धिताय कृष्णाय  
गोविदाय नमोनमः ॥

अन्तिम कड़ी पर पहुँचते-पहुँचते भावावेश के मारे उनका मस्तिष्क एक अजीब तनाव का अनुभव करता और साँस घुटने-सी लग जाती; मानसिक आकुलता से धिम्धी बँध जाती तो स्वर के क्रम अर्धरोदन एवं उच्छ्वास से संघटित होने लगते—प्रभो ! प्रभो ! त्राहि माँ मधुसूदन ! मो सम कौन कुटिल खल कामी !...और फिर—मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई...कँपित स्वर लहरी आत्म-निवेदन की सहज-स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड़ लेती । विभोर हो-होकर और तालियाँ पीट-पीटकर गाये जानेवाले मीरा के वे अनमोल पद बहुधा दिगंबर को अपनी लय में बहा ले जाते थे । भक्ति और भावना की विह्वलता के आगे बूढ़े गले का वह फटा-फुटा खुरदरापन बिल्कुल ही दब जाता था । आवेग की भाफ निकल जाने पर “ललित-किशोर” जी के मुँह से निकलता :

कर्मण्येवाधिकारस्ते

मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफल हेतुर्भू :

मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥\*

भक्ति की इस सगुण धारा ने उन्हें धीरज की नैया दी थी, संतोष के पतवार दिये थे । लिखित वस्तुओं का प्रकाशन उनकी दृष्टि में उतना महत्त्व नहीं रखता था जितना कि लिखना—लिखते चले जाना और पांडुलिपियों का ढेर लगा देना । आगे का काम तो लीलाधर-नटनागर गोवर्धन-गिरिधारी-वृन्दावन बिहारी कुब्जाविलासी-गोलोकवासी कालिय-नागनथैया-कुँवर कन्हैया के कृपा-कटाक्षों पर निर्भर था न !

\*काम करना भर तुम्हारा हक है, परिणामों पर तुम्हें कदापि अधिकार नहीं । काम के नतीजों को निमित्त मत बनाओ, निटल्लेपन से कभी तुम्हारा वास्ता न पड़े ॥—गीता ।

दिगंबर जब ननिहाल रहता तो दिनभर में एक-आध बार आकर नाना के नजदीक बैठ जाता और वह अपनी कृतियों नाती को प्रेमपूर्वक सुनाते ।

नये ढंग से लिखी गई कविता या कहानी को वह समय एव प्रतिभा का दुरुपयोग बताते । इसी से दिगंबर नाना के सामने कभी नहीं खुला । लिखता तो आखिर वह भी था न ?

नानी को सीकों से पखी-विजनी, पान-सुपारी रखने का डब्बा, धुथरी, पउती, बिड़हाड़ा, रिकान्नी, डलिया, चँगेरी, फुलडाली बनाने का भारी शौक था । अब तो खैर देर तक एक आसन से बैठना उनके लिए असंभव था ।

दिगंबर का मन नानी के कला-कौशल पर उतना फिदा नहीं था जितना कि छोटी मामी की सीने-पिराने की हुनरमंदी पर । टिंगने कद की यह साँवली औरत स्वेटर-मोजे तो बुनती थी ही मगर बातें भी बड़ी नफासत से बुनती थी—सच पूछिए तो इसी एक कारन से दिगंबर बाइस-साला छोटी मामी के चंचल नैनो को अपना दिल रेहन किये हुए था । नाम हू-ब-हू उसकी प्रकृति और आकृति पर फिट बैठता था...सलोनी देवी ! चाल-ढाल और रंग-ढंग परखकर सब कुछ भाँप लेने वाला जाने वह कौन था जिसने छोटकी मामी का ऐसा बढ़िया नामकरण किया ? सलोनी ! और अब सलोनी देवी !!

बाकी दो मामियाँ वैसी ही थीं, मामूली घरों में जैसी और जनी-जात होती हैं—नितांत साधारण किस्म की; नाक-नक्शा; चेहरा-मोहरा, शील-स्वभाव किसी भी दृष्टि से अतिशय सामान्य ।

यह तो था दिगो का मातुकुल, ननियाउर कह लीजिए या ननिहाल... जो मर्जी हो आपकी !

पदुमपूरा के पास ही एक गाँव था मढ़िया । अपने मिडिल स्कूल के लिए आस-पास के इलाकों में यह बस्ती बहुत दिनों से नामी था ।

मिडिल के दो साल दिगंबर यहीं का विद्यार्थी रहा । यों तो कई साथी

थे उन दिनों के, मगर बाचो से घनिष्ठता जो हुई सो हृद को पार कर गई थी। अलग रहने पर भी वर्षों तक दिनों में पत्र-व्यवहार चालू था।

वाचस्पति और दिगंबर—दोनों ने '४२ में सातवाँ दर्जा यानी ऑग्रेजी-मिडिल पास की थी। बाचो को स्कॉलरशिप मिला था, पंद्रह रुपये मासिक; मैट्रिक तक लगातार (चार साल) वह मिलता रहा, ग्यारहवें दर्जे तक। '४६ में वाचस्पति ने मैट्रिक की, डिवीजन अक्की फ़स्ट नहीं सेकंड आया था। दिगंबर तो खैर '४४ में ही फेल होकर पढ़ना छोड़ बैठ था। मित्रता फिर भी दोनों तरफ उसी तरह अटूट बनी रही। हाँ, वाचस्पति के पास कई कारणों से उतना वक्त नहीं बचता था जितना कि दिगंबर के पास। अपने दोस्त के लम्बे-लम्बे खत का जवाब देना वाचस्पति के लिए हमेशा बड़ी विकट समस्या रही। छुटे-छुमाहे आठ-दस लाइन घसीट कर अपने को वह जैसे-तैसे तसल्ली दे लेता।

वाचस्पति भा वाट्सन हाई-स्कूल, मधुबनी का प्रतिभाशाली और गंभीर छात्र था। मैट्रिक के बाद पढ़ाई उसकी जो छूटी सो छूट ही गई। अब वह छः लाख की आबादी वाले तीन-तीन थाना की जनता का इन-किलाबी लीडर था, पिछले छः-सात वर्षों के अन्दर नौ दफे जेल जाकर थाली-कटोरा बजा आया था।

वह सोशलिस्ट था।

'४३—'४४ में एक अंडर ग्राउंड सोशलिस्ट लीडर का सम्पर्क पाकर रातों-रात वाचस्पति के जीवन ने त्याग और तपस्या की यह कैंटीली पग-डंडी पकड़ ली थी। दो महीना जाते न जाते वह मधुबनी के विद्यार्थियों का अगुआ बनकर राजनीति की सतह पर जोरों से उभर आया था।

और, रात-दिन पॉलिटिक्स की धमाचौकड़ी यह तभी से चली आ रही थी।

पढ़ाई में पग-पग पर अड़चन पड़ने लगी। हेड मास्टर पहले 'बेटा'

और 'लाल जैसे पगे-भीगे सम्बोधनों से पुकारा करता अब वही नजर मिलते ही अपने गालों को आगरे के गोल-गप्पे बनाकर मुँह फेर लेता । समझाते-समझाते न जाने कै सेर कीमती पसीना अपना वह चुआ चुका था ।

साथियों ने भी कम कोशिश नहीं की थीं—मगर वह नहीं सँभला और बकौल अपने हिंदी टीचर पं० श्री ब्रजवल्लभ त्रिपाठी “विधुवल्लभ” के, एक उदीयमान नक्षत्र घनघोर घटाओं की अटपटी अटारियों पर उठा और चिरकाल के लिए चौपट हो गया !

बाप का देहांत तभी हो चुका था जब बाचो नौ वर्ष का रहा होगा । माँ, छोटी बहन और खुद । तीन ही जने थे । पाँच बीघा बढ़िया जमीन विरासत में मिली थी । माँ लहेरिया सराय से पच्छिम के एक ऐसे गाँव की लड़की थी जो अपनी सामाजिक और राजनीतिक प्रगति के लिए बिहार भर में मशहूर था ।

पिता पं० श्रीपति भा काव्यतीर्थ पहले सिंहबाड़ा और पीछे पुपड़ी (जनकपुर रोड) हाई स्कूल में हेड पंडित रहे । प्राचीन परम्पराओं के प्रति आस्थावान् होते हुए भी, नये युग की ओर उनका दृष्टिकोण असहिष्णुता का शिकार कदाचित् ही हुआ हो ।

माँ अपर प्राइमरी पास थी । '३८ में मढ़िया के राजपूत काश्तकारों ने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन को बस्ती के अन्दर कन्या पाठशाला खोलने पर राजी कर तो लिया पर उन्हें महीनों तक मास्टरनी ही नहीं मिली । मंजूरी लोअर प्राइमरी स्कूल की हुई थी । मिडिल न सही, अपर प्राइमरी जिसने पास की हो ऐसी तो होनी ही चाहिये मास्टरनी । आखिर “ललित-किशोरजी” के कानों तक बात पहुँची तो उन्होंने वाचस्पति की माँ से कहवाया था और वह दो दिन तक सोचती-विचारती रही, तीसरे रोज अपनी स्वीकृत जतला भेजी थी ।

समाज की नकेल जिन कंद हाथों में थी, उन्हें बाचो की अम्मा का

पड़ोस की बस्ती में जाकर यह पढ़ाई करना बड़ा ही अखरा था। सारा कसूर 'ललितकिशोर' की बुढ़ाई पर ओढ़कर नाराजी के अपने-अपने दहकते आँगारों को जैसे-तैसे उन्होंने बुझ जाने दिया था, जीभ की जड़ें उलट ली थीं।

गुरुआनी को मढ़िया वालों ने रहने की भी जगह दे रखी थी। दो कोठरियाँ, छोटा-सा आँगन, तुलसी का चउरा, तनिक-सी बाड़ी, अमरूद के दो और नींबू का एक भाड़...और चाहिये ही क्या ?

माँ लेकिन मढ़िया के अपने उस क्वाटर में लगातार महीना भर भी शायद कभी रह पाई हो। अब तो खैर बिल्कुल अकेली थी, लड़की का ब्याह और गौना हो चुका था। वह ससुराल बस रही थी।

बेटे को लीडरी से फुर्सत मिलती तब न !

इस चार साल भर बाद दिगम्बर की वाचस्पति से भेंट-मुलाकात हुई थी और इसी आशा से दिगंबर पदुमपूरा आया हुआ था। पाँच रोज दोनों साथ रहे।

मास्टरनी लड़के को मना-मनाकर हार बैठी थी, वह शादी के लिए तैयार ही नहीं होता था। एक दिन दिगो के सामने एकांत में अपने दोनों हाथ जोड़कर पहले, पीछे उसकी टुड्डी छूकर वह बोली—बबुआ, अब तेरा ही भरोसा है। अपने मीत को समझा-बुझाकर तू नहीं तो और कौन राजी करेगा ? तीन बरख से माथा पटकते-पटकते मर गई कि बेटा, मुनिया ससुराल चली गई, मैं अकेली इस घर में कैसे रहूँगी ? बहू ला दे लल्लन !...मगर, एक भी मेरी कहाँ सुनता है मुझहा\* ? नहीं सुनता है दिगो !

विह्वलता से उसका गला हँध-हँध आया। दिगम्बर के कन्धे पर दाहिना हाथ रखकर रुक-रुक के वह फिर कहने लगी—बेटा, उसे क्या

\* मूढ़, बेवकूफ।

फिकर है। कौन-सा पहाड़ उठाने कहती हूँ मैं ? बहू आ जायगी तो दो मुट्ठी भात और कलछी भर दाल का कहीं टोटा पड़गा भला मेरे घर में ? राम ! राम राम !! छोकरे की अकल पाटीवालों ने चाट ली है, कुछ भी नहीं समझता है मेरा बेटा ! पढ़ाई-लिखाई छोड़कर रने-बने\* भटकता फिरता है क्या तो किसान-मजूर का राज कैम† करेंगे, सबको जमीन मिलेगी, सबको काम मिलेगा ! कप्पार मिलेगा !! टिटिया के भर जाओगे, कुछ नहीं होगा ! देख तो रही हूँ पाँच बरस से, कौन-सा लड्डू-पेड़ा, मोहनभोग-मालपुत्रा हाथ लगा है ?...

दिगंबर बकर-बकर ताकता रहा और कान पाथकर सुनता रहा अपने मित्र की माँ का उलाहना—आधी आयु की उस महिला पर दिगो को दया आ गई। वह बोला—मुझे तो तुमने कहा नहीं था यह सब कभी ? अब मैं बाचो को जरूर समझाऊँगा।

इस बातचीत के अगले ही दिन वाचस्पति आ गया।

बड़ी बातें हुईं दोनों में। बिसेसरी वाली दुर्घटना और उसके प्रतिरोध का समाचार सुनकर वाचस्पति ने दिगम्बर की पीठ बार-बार ठोकी, फिर उछलती-सी आवाज में कहा—चावश‡ !

—नहीं बाचो, इतने भर से काम नहीं चलेगा।

—तो !

वाचस्पति ने देखा, दिगम्बर एकाएक गम्भीर हो गया है। पीठ टुकवाते समय खुशी की जिस उबाल को वह मुँह के अंदर दबाये हुए था, सो अब बिल्कुल गायब थी। आँखों के फैले हुए कोए सिमट आये थे। साँस की गति मद्धिम से मद्धिमतर हो गई थी, नाक के पूड़े स्पंदन खो बैठे थे।

—क्या करना होगा ?

.....

\* बंजर-वीरान और जङ्गल-मैदान में। †कायम। ‡शाबाश !

—अरे, कुछ कहोगे भी तो !

—आगे का काम...

अब दिगंबर ने मुँह खोला । निगाहें उसकी वाचस्पति की आँखों पर गड़ी हुई थीं । वाचस्पति के मन-प्राण की समूची शक्ति मानो आँख-कान के भीतर बटुर आई थी ।

...तुम्हारी मदद के बिना आगे का काम नहीं होगा बाबू !

वाचस्पति ने दिगंबर का कंधा थपथपाया—कहो न ?

तुम्हें बिसेसरी का दूल्हा बनना होगा !—कमांड की जमी दोन में दिगंबर ने कहा ।

वाचस्पति की पलकों में तनाव आ गया, दाँतों ने मसूड़ों का दबाव महसूस किया ।

अपने को सँभाल कर वह बोला—दूल्हा ठीक कर दूँ, यही चाहते हो न ?

—तुम्हें आखिर क्या एतराज है ?

—मेरी तो शादी करने की इच्छा नहीं है ।

—इच्छा की भी तुमने खूब कही ! बता दो, उतार लाऊँगा...कहाँ टाँग रखी है अपनी यह पोटली तुमने ?

इस पर वाचस्पति को थोड़ी हँसी आ गई तो दिगंबर भी तनिक मुसकुराया । फिर कहा—सारी बात खुलकर मैं तुम्हें बता चुका हूँ । जिंदगी भर तो अनब्याहा तुम रहोगे नहीं, शादी एक न एक रोज करवे करोगे । बिसेसरी बड़ी समझदार और बहादुर लड़की है । बोझा बनकर तुम्हारी गर्दन नहीं तोड़ेगी वह । साथ रखोगे और माकूल ट्रेनिंग दोगे तो अच्छी से अच्छी साथिन बनेगी...हम गाँव-गाँव के लोग ठहरे, समाज सुधार की भी हमारी रफ्तार मद्धिम ही होगी । ऐसा नहीं कि किसी मद्रासी या पंजाबी सोशलिस्ट जवान को लाकर तुम हमारे सामने खड़े कर दो और कहो, यह

रहा बिसेसरी का दूल्हा ! ऊँ हूँ, अभी यह कहाँ चलेगा ? नहीं चलेगा ।  
तुम्हें दो रोज का मैं वस्त्र देता हूँ, सोच लो बाबू अच्छी तरह !

वाचस्पति उठकर चहलकदमी करने लगा, दिगंबर बैठा ही रह गया ।  
धोती की घुटनोंवाली छोरों पर चोरकाँटी लग गई थी, एक-एक करके वह  
उन्हें छुड़ाने लगा ।

टहलते-टहलते बाबू बोला—अगर गोत्रों और वशों के रिश्ते समय  
में टकराते हों तो ?

दोस्त की ओर नजर फेंक कर दिगंबर ने कहा—तुम भर मुँह एक  
बार “हाँ” तो कह दो फिर सब ठीक हो जायगा ।

—माँ को पूछ लूँ, इसकी भी इजाजत नहीं दोगे ?

—पाँच साल से यह जो सोशलिज्म का पापड़ बेलते आये हो सो  
सब माँ से पूछ लिया था न ?

वाचस्पति के होठों पर हँसी तैर आई, मन ही मन उसे एक प्रकार  
की गुदगुदी का अनुभव होने लगा । ब्याह के नाम पर अब तक उसने  
एक मक्खी तक को अपनी पीठ पर बैठने नहीं दी थी । पिछले पाँच-छः  
वर्षों में जाने कितने लड़की वालों ने उसके लिए चक्कर काटे थे और  
लौट-लौटकर गये थे ! माँ उसे मनाते-मनाते हार गई थी !

लेकिन बिसेसरी की शादी का सवाल कोई मामूली सवाल नहीं था ।  
बित्ता-आधा बित्ता भर की छाती नहीं, गज भर का सीना चाहिये था उसे  
हल करने के लिए !

तरुण वाचस्पति के प्रफुल्ल होठों ने दिगंबर को पुलकित कर दिया ।  
फौरन उठकर उसने अपने साथी को छाती से लगा लिया ।

## सोलह

दुर्गानंदन एक दस्तावेज पढ़ने में मशगूल था ।

दो-तीन मुक्किल उसे घेर कर बैठे हुए थे ।

आसिन का महीना । दुपहर का वक्त । कड़ाके की धूप...दिगंबर इसटीशन से सीधे कहचरी\* आ गया था ।

कुछ देर बाद अलग खड़ा रहा वह आशा में कि पहले नजर दुर्गानंदन की ही उस पर पड़े । मगर सो ज़ब नहीं हुआ तो हारकर वह बरामदे पर पहुँचा ।

—पर्नाम दुर्गा भइया !

—दिगो ?

पहले मुँह खुला, आँख पीछे उठी दुर्गा की । बड़ी हलतलबी† थी । होल्डर उठाकर पास ही बैठ जाने का इशारा किया और निगाह फिर घसीट कर लिखी मुंशीयाना सतरों पर रुक-रुक के रेंगने लगी ।

—क्या हाल है गाँव घर का ।

उसी मुद्रा में दुर्गानंदन ने पृष्ठ लिया ।

दिगंबर उस छोटी-सी चौकी पर किसी प्रकार बैठने की जगह बना चुका था, बोला—सब ठीक-ठाक है दुर्गा भैया ! लेकिन इस वक्त मैं नौगछिया से कहाँ आ रहा हूँ ?

जिज्ञासा में दुर्गा की भौंहे चौड़ी होकर ऊपर खिंच गईं...निगाह पर अब भी दस्तावेज का ही कब्जा था ।

दिगंबर कभी दस्तावेज की ओर, कभी मुवकिलों की ओर बहुत करके गउँआ‡ की ओर देख रहा था ।

कैसी अच्छी खबर वह लाया था !

कितना बड़ा काम वह कर आया था !

उसने धीरे से कहा—मातृक× से आ रहा ।

—नानी का कुशल-समाचार कहो ?

\*कचहरी, अदालत । †हाल-तलबी, काम पूरा कर देने की अस्त-व्यस्तता । ‡अपने गाँव का रहने वाला । ×ननिहाल ।

—बखत किसी तरह खेप रही है ।

—मुझे घंटा भर लगेगा इस काम में, तुम तब तक टहलो-बूलो । उधर भालू नाच रहा है, एक जादूगर भी आया है...सो सब देखो जाकर । पानी चाहो तो उधर ट्यूब वेल है, पी आओ । चाह पीछे पियेंगे दोनों जने साथ चल के...

दिगंबर को हँसी आ गई, वह बोला—इतमीनान से आप अपना काम कीजिए दुर्गा भइया ! यहाँ कोई हड़बड़ी नहीं है...बल्कि अपनी कोठरी के ताले की कुन्जी दे दीजिए, जाकर वहीं आराम करूँगा ।

दुर्गानन्दन ने कुत्ते की जेब से निकालकर चाबी दिगंबर को थमा दी—जाओ ।

दिगो डेरे पर आया । कंवल खिझाकर कोठरी के अन्दर ही लेट गया ।

जैनगर की ओर से आने वाली ट्रेन में दर-असल आज भारी भीड़ थी । दिगंबर को बैठने की जगह कहाँ मिली थी ? वह तो घुटनों पर खड़ा होकर मधुबनी तक आया था—खजउली से राजनगर, राजनगर से मधुबनी...तीन इसटीशनों के बीच के दो फासले मानो टँग करके पार किये थे । बारी-बारी से दाहिनी और बाँई बाँह उठा-उठाकर ऊपर की उन चौड़ी लुइयों को थामता आया था जो दूरगामी पसिंजरो के सामान की अधिकता से लचक रही थीं—डब्बे के नीचे की हिलती धुरियों से तुक मिला रही थीं । बातचीत, शोर-गुल, छींक-खाँस, धक्कम-धुक्की, भीड़-भाड़...दिगो की तबियत भारी-भारी सी हो रही थी, घड़ी-दो घड़ी वह घोर निर्जनता में बिताना चाहता था ।

तन्हाई के लिए उसकी रूह मानो तड़प रही थी । सो, अपेक्षित एकांत स्थान अब आकर दिगंबर को मिल गया तो बड़ी खुशी हुई ।

मिनटों में उसकी पलकें थकान से तनी नसों के भुलावे का शिकार बन गई—तकिये पर माथा, गाल तले हथेली ।

बाबू दिगंबर मल्लिक सो गये ।

सपने में उन्होंने बिसेसरी के ब्याह का आयोजन देखा...

वाचस्पति को कई आदमी भड़का रहे थे, यह भी देखा...

फिर आफ़ी नींद पूरी नींद में बदल गई ।

साढ़े चार बजे दुर्गानन्दन लौटे, तब भी दिगंबर सो ही रहा था ।

—उठ दिगो, कितना सोता है !

—वैऽऽऽऽ उँ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ :...

दिगंबर ने करवट बदल ली और माथे को तकिये में गोज़ लिया ;

जूते खोलकर दुर्गानन्दन ने एक ओर रख दिये, कुर्ता निकालकर देवल\* में ठुकी कील से लटका दिया । फिर कंबल पर आकर दिगंबर से बिलकुल सटकर बैठा और आधी धड़ का बोझा उसकी पीठ पर डाल कर स्वयं दिगो के चेहरे पर झुक गया ।

—उठता है कि नहीं ?

—उठ तो गया हूँ !

—ऊँ हूँ, अभी कहाँ उठा है ?

—यह लो !

दिगंबर ने फिर करवट बदल ली तो दुर्गानन्दन हँस पड़ा । बोला—  
वाह रे मल्लिक ! अहदीपन की यही पूँजी लेकर तुम मुखिया से मोर्चा  
लोगे ? हि हि हि हि...

अब वह दिगो के एक गाल पर निहायत हलकी-फुलकी चपतें लगाने  
लगा !

दिगंबर के हाथ में हरकत आई, अपने गाल पर से दुर्गा की हथेली  
हटाकर वह छाती के पास ले आया । आँख मूँदे ही पंजा लड़ाने लगा ।

—अच्छा ! मस्ती चढ़ी है बाउ रे ?

\*दीवार, भीत ।

अपनी उँगलियाँ कड़ी करके दुर्गानंदन ने दिगंबर के पंजे को पहले खींचा, पीछे कसकर मरोड़ा ।

दिगंबर 'ईस-ईस' करके उठा और बैठ गया ।

दुर्गानंदन था भी दिगो से डबल न !

—आँख-मुँह पोंछो, चलो चाह पी आवें ।

—चलिए, लेकिन चाय नहीं ।

—तो फिर कलाकंद खायगा ?

दुर्गानंदन ने परिहास किया तो दिगंबर बुजुर्गी टोन में बोला—काम तो मैं आपका ऐसा कर आया हूँ कि बंगाली केबिन का रसगुल्ला खिलाइए चलके...

त्रिसेसरी के मझले मामा की आँखें चमक उठीं । खुशी के मारे रबड़ के बचकानी गेंद की तरह उछल कर मुँह के जंगले से निकला—सच ?

दुर्गानंदन की खोपड़ी के भीतर मानो कुल्फी-मलाई का लड्डू नाचने लगा । दिगंबर को भर पाँज\* पकड़ लिया उसने । प्रसन्नता की मात्रा इतनी अधिक थी कि बोल नहीं फूट पा रहा था । आज दिगो दुर्गा को मामूली कायस्थ युवक दिगंबर मल्लिक नहीं, संकटमोचन बजरंगवली हनुमान जी का अवतार प्रतीत हो रहा था—शारीरिक बल में न सही, सूझ-बूझ की दृष्टि से तो वह अवश्य ही दुर्गानंदन के लिए संकटहरण अंजनीनंदन साबित हुआ था ।

दिगंबर बाहर जाकर पेशाब कर आया । लोटा में पानी था ही, आँख-मुँह पोंछकर बैठा ।

धीरे-धीरे उसने दुर्गानंदन को सारी बातें बतला दीं ।

—दिगो, अब चाह पी आवें चल के !

—नहीं, कहीं चलके पहले यह तो मालूम करें कि वाचस्पति और

\*बाहुपाश में ले लिया ।

बिसेसरी की आनुवंशिक परंपराएँ इस ब्याह के प्रतिकूल तो नहीं पड़ेंगी ।  
अब इसी बात पर हमारी सारी उछल-कूद निर्भर है दुर्गा भइया !

—दुर्गानंदन का चेहरा भारी हो आया, साँस की धौकनी फूलने लगी । ठोर हौले-हौले पटपटा उठे—बाबा कपिलेश्वर ! तुम्हारा ही आसरा है; देखना हो बंभोलेनाथ !!

कुछ देर बाद एकाएक उसे कुछ याद आया, बोला—अच्छा, अपने दोस्त के माँ-बाप की पहली पीढ़ियों के नाम लिख लाये हो ?

—हाँ, और अपनी भांजी का तो यह सब आपको मालूम होगा ही !  
मंजूरी मुद्रा में दुर्गा ने माथा हिला दिया !

—यह लीजिए ।

कमीज के पाकेट से निकाल कर बादामी कागज की एक पुर्जी दिगंबर ने दुर्गा की ओर बढ़ा दी । कागज के उस टुकड़े पर पेंसिल से लिखा हुआ पहला वाक्य था : वाचस्पति भ्रा, पिता श्रीपति भ्रा, गोत्र वत्स...

—दिगो, गोत्र तो बिल्कुल ठीक है । हमारी बहन का गोत्र काश्यप पड़ता है... इतना तो मुझे भी मालूम है कि वत्स और काश्यप गोत्रों में ब्याह होता है ।

गोत्र का झमेला हटा तो दोनों की आधी फिकिर मिट गई !

—अपने वकील साहेब के बूढ़े पिता जी इन बातों के भारी जानकार हैं । पक्षाघात ने पस्त कर रखा है बेचारे को । यहीं अंदर एक कोठरी में पड़े रहते हैं । जाकर मैं उन्हीं से क्यों न पूछ आऊँ ?

—जाइए-जाइए, फौरन पता लग जायगा ।

दुर्गानंदन अंदर गये, दिगंबर साँस टाँग कर परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा ।

पाँच-एक मिनट हुए होंगे कि दुर्गानंदन हुलसा हुआ चेहरा लेकर बाहर निकले ।

दिगंबर का भी मुख मंडल उद्भासित हो उठा ।

दोनों ने बेताबी से एक दूसरे को बाँहों में कस लिया। किसी के मुँह से बोल नहीं निकल रहा था। खुशी की बाढ़ में उतराते हुए दो दिल उछल-उछल के एक दूसरे को बधाइयाँ दे रहे थे।

थोड़ी देर बाद दोनों डेरे से निकले और उनके पैर उसी रास्ते पर बढ़ने लगे जिधर बंगाली हलुआई का “सुभाष केबिन” था।

## सत्तरह

दुर्गापूजा के दिन थे।

कहीं से ढोल और पिपही की आवाज आ रही थी। बूलो अपने घर में भाई-भाभी के बड़े पलंग पर टाँगें फैलाकर तिरछा लेटा था।

पिपही पर ढोलिया क्या गा रहा है ?

जिज्ञासा में बूलो की आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। मन के करेंट को उसने कान की कटोरियों से छुआ दिया और सुनने लगा...

काली कमलीवाले तुभको लाऽऽखो पर्नाम !

लाऽऽखो पर्नाम !

लाऽऽऽखो पर्नाम !

तुभकोऽऽ...

धत् तेरी ! सौ साल का पुराना गीत गा रहा है साला ! सीसम की टहनियों से सर्द ढोल पीट-पीटकर ‘टापर-टुपुर’ ‘टापर-टुपुर’ की आवाज निकालने वाले इन बजवैयों से भला और आशा ‘ही क्या रखते हो ? ‘पीं-पीं’ करने वाली अनगढ़ पिपही से भला और कौन-सी लय निकलेगी ?

—अजी, लय तो इस पर भी अच्छी से अच्छी निकाली जा सकती है ! गाने-बजाने का शऊर भी तो हो !

अपने गाँव के दोनों ढोलियों को गालियाँ देता हुआ बूलो आखिर खुद ही सीटियाँ बजा-बजाकर गाने लगा :

चुपके-चुपके बोल मैना !

...चुपके !

री चुपके !

ओ चुपके !

तू चुपके !

री मैना, तू चुपके-चुपके बोऽल !

सीटियाँ छूट गईं तो सिसकारी शुरू हुई—अब बूलों सिसकारियों से अपनी मैना को चुप करा रहा था...आँखें मूँद कर समझा रहा था, उँगली उठा-उठाकर ।

बिल्ली की तरह पैर मारकर बिसेसरी अंदर आई और आहिस्ते से अपनी हथेलियाँ बूलो की मुँदी पलकों पर डाल दीं...

तोता चुप हो गया ।

मैना दम साधे हुए थी ।

बूलो के हाथ आंगंतुक की कलाईयाँ टटोल रहे थे ।

—भाभी !

मुलायम हथेलियाँ, पतली-पतली कलाईयाँ, रस्सी की तरह के मड़ोर-दार कङ्कन...लाख की बूँदेदार चूड़ियाँ, चार-चार...नहीं, यह भाभी तो नहीं हो सकती !

और सब ठीक, चूड़ियाँ काँच की कहाँ गईं ?

तो फिर कौन होगी यह ?

बूलो भारी असमंजस में पड़ गया ।

क्या बढ़िया मौजी मूँड में बेचारा अपनी मैना से निबट रहा था, एकाएक यह कौन आ गई ? क्यों आ गई ?

नहीं रहा गया, आखिर खिलखिला पड़ी बिसेसरी भी !

—बीसो !

बूलो चीख उठा ।

—अब क्यों नहीं चीन्होगे ?

हथेलियाँ हटा ली थीं बिसेसरी ने । बूलो भी उठ बैठा, पराजय की हलकी-सी भावना आँखों को भली-भाँति चमकने नहीं दे रही थी ।

इतने में किसी काम से भाभी भी घर के अन्दर आ गई ।

—यह चुप्पी किस लिए ?

भाभी के इस कौतूहल का समाधान देवर की ओर से होता । सो नहीं हुआ तो बिसेसरी मुसकराने लगी और बोली—मैना को चुप करा रहे थे बूलो, मैं आई तो निगोड़ी अपनी चुप्पी इन पर लाद कर खुद फुर्र से उड़ गई !

इस पर तीनों हँस पड़े ।

छिक्के पर छोटी-सी हँडिया टँग रही थी कोने में । भाभी ने उचककर उसमें से लाल मिर्चें निकाल लीं और उस घर से बाहर निकल गई ।

—इस बार मिर्जापुर ( दरभङ्गा ) से दुर्गा आई है, दश रुपये लगे हैं । मुद्रा प्रतिमा बड़ी अच्छी है । तुम नहीं गये हो, मैं तो देख आई हूँ...दशभुजा सिंहवाहिनी की मूर्ति है...

बिसेसरी एक साँस में इतना कुछ बोल गई तो बूलो माथे पर दोनों तर्जनियाँ उठाकर सींगों की मुद्रा बनाकर पूछ बैठा—और महिषासुर कैसा है बीसो ?

होठ और टुड्डी बिचकाकर वह बोली—धड़ तक पाड़ा\*, गर्दन से लेकर माथा तक दानो†...और कैसा रहेगा ? उसके बारे में क्या पूछना !

—मुझको तो महिषासुर देखने में बड़ा ही अच्छा लगता है बीसो !

—उँह ! मुझे तो यह कभी नहीं सुहाया !

—अच्छा, कितनी बेहरी‡ उठी होगी इस बार ?

\*भैंसा । †दानव । ‡चंदा ।

—जानो तुम लोग !

—क्यों बीसो ?

—यह सब पता रखना मर्दों का काम है ।

बूलो तनिक चुप हो गया । फिर बोला—कई ऐसे घर हैं जहाँ के मर्द हमेशा परदेश रहते हैं या मर गये हैं, वहाँ भीतर-बाहर के सारे काम औरतें ही संभालती हैं । सो यह कैसे होता है ?

बिसेसरी को हँसी आ गई । चतुर बुजुर्ग की तरह माथा हिलाने लगी । कहा—ठगो मत मुझको बूलो ! सब समझती हूँ मैं...

आगे की बात सुनने की उत्सुकता से बूलो की आँख के दोनों खुले कोए दुगने फैल गये । पसरी हुई उसकी वह निगाह बिसेसरी के चेहरे को मानो पी रही थी ।

...सब समझती हूँ मैं ! सोराज हुआ होगा। दिल्ली और पटना में । यहाँ जो ग्राम-सरकार कायम हुई है, उसके एगारह ठो मेम्बर हैं । जनानी भी एक्को गो है बूलो ?

क्या जवाब देता इसका ? बूलो को कुछ नहीं सूझा, वह कान पर जनेऊ लपेटता हुआ बाहर निकला—सचमुच पेशाब लगी थी या बहाना था सो राम जाने !

बिसेसरी भी निकल आई ।

इस बार धान की फसल खूब अच्छी थी ।

हरे-हरे पौधों के बादामी-भूरे-धूलिया शीश निकल आये थे ।

धान के फूलों की भीनी और जमी खुशबू बीतते क्वॉर की सलोनी सिरहन में शरद् की अनमोल ताजगी भर रही थी ।

किसान मस्त होकर सबेरे-शाम अपने-अपने खेतों की परिक्रमा कर आते थे । निचली जमीन में खेसाड़ी और मटर की बुवाई चल रही थी । उपरले खेतों में लोग जौ-चना, मसूर-तीसी वगैरह बो रहे थे ।

बूलो के पास रबी की फसल के लायक जमीन नहीं थी—नहीं कै

बराबर कहिये । पाँच-सात कट्टा जमीन भी क्या लेखा-लायक जमीन कहलाएगी ?

आज सबेरे बूलो चार-पाँच कबई\* मार लाया था ।

ओसारे में दोचुलिया पर एक ओर भाभी कबई तल रही थीं, दूसरी ओर दाल चढ़ी थी ।

घर से निकलकर त्रिसेसरी ओसारे में बैठ गई तो भाभी ने पूछा—  
क्यों बीसो दाइ, तुम्हारे मामा भी तो खूब कबई लाते होंगे ? उनके कई खेतों में सुना है मछलियाँ चलबल-चलबल करती रहती हैं—कबई, सिंगी†, माँगुर, गरइ...

—आ दुर् ! किसने कहा है भाभी आपसे यह सब ?

—माहे बतला रहे थे ।

—उँह ! वो तो भारी गप्पी हैं भाभी !

—दिगंबर भी गप्पी हैं ?

दिगंबर के नाम पर त्रिसेसरी चुप हो गई ।

उसके दुनाई और बुदुर मामा तीन-चार बार मछलियाँ लाये थे । दो-एक बार बुदुर के मुँह से त्रिसेसरी यह भी सुन चुकी थी कि भीमताल-चर के पास जो चार कट्टा धानवाला खेत है उसमें अबके जाने कैसे इतनी मछलियाँ आ गई हैं । चर‡ के उस ओर दुसाधो और मुसहरों की एक बस्ती है मुसाई पट्टी । वहाँ वाले रात को आकर मछलियाँ मार ले जाते हैं...कौन रखवाली करे इन मछलियों की !

कुछ हो, माहे मामा ने जरूर बढ़ा-चढ़ाकर कहा होगा !

खक्खक्खक्खा ऽ ऽ ऽ ऽ स् क्वा ऽ ऽ :...

गला साफ करने की यह बूलो की आवाज थी ।

त्रिसेसरी चकुआई—हैं कहाँ यह ?

---

\* मछली की एक जाति †मछली की जातियाँ । ‡बरसाती भील ।

भाभी ने हँसकर कहा—खानदान ही यह हनुमान जी का ठहरा !  
वह देखो, अमरूद की डाल पर लंगूर बैठा है !

नाक के पृङ्गे, होठ के कोर और टुड्डी वाला गढ़ा—सबको सिकोड़ कर मुसकान को दबा लेने की चेष्टा की बिसेसरी ने, कि उधर बूलो अमरूद की डाल पर से कूदा, धम्म !

—लो, मैं कहती थी न !

भाभी खिलखिला उठी, बिसेसरी ने खुलकर साथ दिया ।

भर फाँफड़\* अमरूद थे । बूलो ने बरामदे पर उभल† दिया । एक बड़ा सा उठाकर उस पर वह सामने वाले चार-चार दाँत गड़ा चुका तो पलकों के इशारे बिसेसरी पर पड़े—लो, तुम भी अमरूद खाओ !

एक पीला सा डंभक अमरूद उसने हाथ बढ़ाकर उठा लिया । धीरे-धीरे खाने लगी ।

पहला अमरूद खा चुका तो सहज लहजे में बोला बूलो—भाभी, दिगो ननिहाल से आ गए हैं...

जिज्ञासा की अधिकता के कारण भाभी ने मुँह बा दिया ।

आधा खाया हुआ अमरूद, आधी उठी हुई हथेली...बिसेसरी का स्तम्भित शरीर किसी वस्तुवादी मूर्तिकार के शिल्प का सुन्दर नमूना बनकर रह गया ।

अब आगे बूलो के मुँह से क्या निकलेगा ?

भाभी का दिल धड़क रहा था ।

बिसेसरी काठ की तरह निश्चेष्ट हो रही थी ।

दूसरे अमरूद पर हाथ डालते हुए बूलो बोला—भारी काम कर आये हैं दिगो । सब ठीक हो गया । अगहन सुद दशमी के दिन लगन तक ठीक कर लिया गया ..दुर्गा चाचा की राय से सब कुछ हुआ है...

\* मर्दानी धोती का आँचल । † डाल दिया, धर दिया

हऽ !

भाभी ने फक् से निसास छोड़ी ।

फूल-सा हल्का माथा लेकर बिमेशरी वहाँ से उठी और आँगन से बाहर निकल गई ।

## अट्टारह

दुर्गानन्दन दुर्गापूजा की छुट्टी में चार रोज के लिए घर आया था ।  
माँ और बहन से उसने सारी बातें बता दी थीं । दोनों खुश हुईं और आतुर होकर भगवती दुर्गा से प्रार्थना कीं—जल्दी से जल्दी पार-घाट लगाओ मइया !

समस्तीपुर जाकर दुर्गा बच्चन से भी स्वस्ति ले आया । भला, इसमें असहमत होने की क्या बात थी ? हाँ, अन्त में बच्चन ने कहा—बाबूजी को सूचित कर देना, क्या बुरा होगा ?

—बुरा तो नहीं होगा, मगर अड़चन जरूर पड़ सकती है फिर !

—तो, रहने दो !

बस...

दिवाली के दिन दिगंबर और दुर्गानन्दन पदुमपूरा पहुँचे । वाचस्पति को पहले ही खबर कर दी गई थी, वह घर पर ही मिला ।

एक मित्र की तरह खुले दिल से उसने दुर्गानन्दन का स्वागत किया । दोनों देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे ।

वाचस्पति का बर्ताव दुर्गानन्दन को बड़ा ही मोहक लग रहा था । बाबू ने खुद ही वह बात छोड़ दी—आप लोग सामाजिक विघ्नता के कारण जिस मुसीबत में फँस गये थे, उसके बारे में दिगंबर से मेरी काफी चर्चा हो चुकी है और हमने जो फैसला किया सो आपको मालूम हो गया होगा...

—तभी तो दौड़े आये हैं ! जो समूचे देश की दुर्दशा पर दुखी रहता

हो और देश की भलाई के लिए खुद फकीरी मेस धारण किये हुए हो, उससे भला किसका क्या छिपा रहेगा और कब तक ?

वाचस्पति ने कहा—व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है। है न ?

दबी हुई लिबलिबी टोन में दुर्गानन्दन ने कहा—जी, बिल्कुल दुरुस्त है आपका कहनाम\* !

खादी की धोती, सफेद-पीली-भूरी धारियों वाली हॉफ कमीज...ऊपर सुराहीनुमा गर्दन पर गोल और मझोली आकृति का मस्तक। सूत गेहुँआ, आँखें साफ और साधारण ढङ्ग की। नाक-कान-कपार भी इसी अनुपात में पड़ते थे। बाएँ पैर पर धाव का भारी निशान था। दोनों पैरों की दशाँ उँगलियों के बढे हुए नाखून तूफानी जीवन की असाव्यस्तता के सबूत थे।

दुर्गानन्दन देर तक वाचस्पति की शकल-सूरत को देखता रहा।

क्या उमर होगी इनकी ?

दिगो ने एकइस बतलाया था, बाइस होगी जास्ती से जास्ती...इससे अधिक तो एकदम नहीं। दिगम्बर की बीस है कि एकइस ? एकइस !

फिर तो हद से हद बाइस वर्ष के होंगे यह बाबू साहेब...

कि इतने में अंदर से घी में तले हुए मखाना दुर्गानन्दन के सामने आ गये—फुलही तश्तरी में। लाने वाली थी आठ-नौ साल की एक लड़की। दूसरे हाथ में वह पानी ले आई थी, अपखोरा† में भरकर।

—नाश्ता कीजिए !

—जी, इसकी मगर क्या जरूरत थी ?

वाचस्पति को दुर्गानन्दन की तकल्लुफी पर हँसी आ गई, लेकिन वह कुछ बोला नहीं।

\* कथन, कहना। † काँसे की पुराने किस्म की गिलास, गोड़ीवाली।

अब दिगम्बर उसी आँगन से बाहर निकला। बैठके में आकर बोला—वाचस्पति, जाओ, तुम भी नाश्ता कर आओ !

—और तुम ?

—मुझे तुम्हारी माँ ने यो थोड़े फुर्सत दी है ?

वाचस्पति आँगन की ओर गये।

दुर्गानन्दन खूब प्रसन्न थे। वाचस्पति की माँ का क्या गस्स है, यही जानना शेष था। सो बाबू दिगंबर मल्लिक उस बेचारी का हृदय अच्छी तरह मालूम कर चुके थे। वह, उल्टे, दिगो को भर-भर सूप असिरवाद\* दे रही थी। कह रही थी—तुमने मेरे लड़के को कौन सी जड़ी भुखा दी है ? चार साल मे मनाने-मनाने मैं हार गई थी और तुम चुटकी बजाते-बजाते उमे रिझा बैठे ! इसको कहते हैं जादू...

लड़की की शकल-सूरत और सील-सुभाव के बारे में मास्टरनी दिगम्बर से पहले भी सुन चुकी थी, इस तरफ से वह बेफिक्र थी। दिगंबर की बातों पर उसे पूरा विश्वास था।

एक बात उसने बार-बार पूछी थी—उमिर कितनी है लड़की की ?

चौदह—दिगंबर ने कहा था।

—मेरी कसम ?

—हाँ, मामी, अपनी कसम !

—अपनी नहीं, कहो, मेरी कसम !

—आपकी कसम !

तब जाकर वाचस्पति की माँ को तसल्ली हुई और वह भर मुँह बोली थी—अगले साल बाबू तुम्हारा भी ब्याह हो के रहेगा !

—धत् !

—गाँठ बाँध लो, न हो तो...

\* आशीर्वाद ।

पीढ़ा छोड़कर दिगंबर उठ गया था, शरमा गया था न ! आंगन के बीचो-बीच थोड़ी देर टहलता रहा था तो मास्टरजी ने नाश्ता के लिए बुला लिया था...

दुर्गानन्दन नाश्ता करके पानी पी चुके तो दिगो बोला—समय नहीं है अब, साढ़े चार बजे की ट्रेन पकड़नी होगी और मधुबनी उतर कर रामनगर जाना होगा पंजियाड़\* के पास...

जेब से छोटा सरौता और सुपारी निकालते हुए दुर्गानन्दन कहा—  
बातचीत हो ही गई, मैं बिल्कुल तैयार हूँ ।

—ठहरिये, मधुबनी तक तो बाचो भी चलेगा ।

—वाह ! वाह !! फिर क्या कहना !

थोड़ी देर बाद तीनों स्टेशन आये, दश-पंद्रह मिनट बाद ट्रेन आई ।  
भीड़-भाड़ मामूली थी । बैठने की जगह अच्छी तरह मिल गई ।

बातचीत में वाचस्पति ने इस मुद्दे पर जोर दिया कि फिजूल का आडम्बर न तो कन्यापक्ष करे और न वरपक्ष ही । निहायत सादगी से सारे काम निबटाये जायें...

दुर्गानन्दन को यह मानने में भला क्या आपत्ति होती । बार-बार उसने भी कहा—जैसा आप चाहेंगे, बिल्कुल वैसा ही होगा...

मधुबनी स्टेशन पर तीनों उतर गये और चौराहे की पान की दूकान तक साथ गये ।

चार-चार बीड़े पान सबने मुँह में डाले । दाम वाचस्पति देना चाहता था परन्तु दुर्गानन्दन ने आग्रहपूर्वक उसे रोक दिया, खुद उसने कीमत चुकाई । टिकट लेते वक्त भी यही नाटक हुआ था ।

---

\*पञ्जोकार ( मैथिल ब्राह्मणों को शादी-ब्याह की लिखित अनुमति देने वाला रजिस्ट्रार ) ।

पान खाने के बाद दिगंबर और दुर्गा उत्तर वाली सड़क पर आगे बढ़े, वाचस्पति ने अपना रुख पच्छिम की ओर किया ।

## उन्नीस

समय पर वर्षा होती गई हो, बाद और सूखा का हमला न हुआ हो तो अहगनी फसल कतकी नहान के बाद ही खलिहानों में पहुँचने लगती है ।

पंडिताइन ने सूआपंखी धान का हरियल चूड़ा कुटवाकर सँभाल रखा—दश तामा याने कच्ची तौल से दो पसेरी ।

कैसी भी सादगी से ब्याह होगा, दश सेर चूड़ा तो चाहिये ही । अहगन में शादी हो किसी के घर और अगता\* धान का चूड़ा न लुटे !

साठी, कतकी और असिनी—ये धान पहले ही तैयार हो जाते हैं... अधिक तो नहीं, गौरी ने एक कोली† में कतकी रोप रखी थी सो काम आई । नहीं तो, अधपकी फसल काटकर कौन किसी को धान देता है !

जेठ में ब्याह नहीं हो पाया तो क्या अगहन की लगन भी खाली लौट जायगा ?—गौरीनन्दन को लोग लाख कामचोर कहें, है मुदा भारी दूरदेस ! उसी के पर्ताप से सूआपंखी धान का यह दशा तामा चूड़ा जुटा पाई हूँ...पंडिताइन बार-बार सोच रही थी और मन ही मन गौरी को अच्छा डाक्टर बनने का असिरबाद दे रही थी ।

बात फैलने नहीं दी गई, दिगंबर और दुर्गानन्दन की कड़ी हिदायत थी कि जब तक दूल्हा बस्ती में आ नहीं ले तब तक होठों को सिये रहना ।

योजना यह थी कि लगन की निश्चित तिथि से एक दिन पहले ही दिगंबर वाचस्पति को अपने घर ले आयेगा । थोड़ी-बहुत फल-फलहरी, पान, मिठाई वगैरह सामग्री लाने की जिम्मेदारी दुनाई ने ली । पद्धति हाथ में थामकर पुरोहिताई का काम बचन के सुपुर्द; दो दिन का अवकाश

\*और-और किस्म के धान से पहले ही तैयार हो जाने वाला; पहले का रोपा हुआ । †निहायत छोटा सेत, बड़ी क्यारी ।

लेकर वह ऐन मौके मर पहुँच जायेंगे। भाभी, माहे की माँ, मम्मली बहू, खंजन, पंडिताइन और रामेसरी और सुबधा की माँ...बस, इससे अधिक औरतों का जमावड़ा नहीं होने दिया जायगा। बड़ी और छोटी बहुएँ किसी तरह की नुकाचीनी नहीं कर पावेंगी...दिन को नहीं, रात के वक्त शादी होगी। हेदुआ और गोनउड़ा सेवा-टहल या मेहनत-मशकत के कामों के लिए मुस्तैद रहेंगे...बिसेसरी को तैयार रखने का भार रामेसरी पर।

फिर भी, दो-तीन दिन पहले ही मुखिया को भनक मिल गई। उसके जी में आया कि पंडिताइन की बीमारी का एक्सप्रेस तार देकर खोखा पंडित को क्यों न बुला लिया जाय? दिगंबर और दुर्गानन्दन की सारी होशियारी कोई आकर घुसाड़ दे तो क्या हर्ज है? पर, नहीं...पंडित तो बहुत ही बुढ़ा हो गया है, दो नहीं चार साल अधिक से अधिक और जियेगा। तो, इन छोकरोँ से जिदंगी भर का बैर मोल लेकर अपने को आखिर क्या हाथ आयेगा? ठूँठ ठूँठ है, बिरवा बिरवा ही ठहरा। पुरानी पीढ़ी के उस खूँसट का बस चले तो फिर बिसेसरी के लिए सत्तर साल का कोई मुर्दा आ जाय दूल्हा बनकर! छी-छी-छी-छी !...माहे और दिगंबर ने उस बुढ़े को खदेड़ कर बिल्कुल ठीक किया था—

अपने दालान पर अकेला ही बैठा था मुखिया, तख्तपोश पर। पीठ देवाल से टिकी हुई थी।

तिपहरिया का ढलता सूरज !

छाँह में बैठे रहने पर भी तन-मन को हमंती बयार अखर कहाँ रही थी? नहीं अखरती थी कि ! तनिको नहीं।

मुखिया की पलकें पूरी खुलीं, निगाह का मगर थाह-पता नहीं था।

...सॉवली सूरत का लजापुर चेहरा, सोलह-साला छोकरी की मासूम चितवन, कपार पर तितलीनुमा टिकली, गोल सेंदुर की बारीक रेखावाली सेंथ...

यह कौन थी जो मुखिया के अंतश्चक्षु पर हावी हो रही थी ?

यह कौन थी जो मुखिया की समूची चेतना को प्रतिमा के अपने घेरे के खींच लाई थी ?

यह कौन थी जो मुखिया को नई पौध के प्रति अधिक से अधिक संवेदनशील होने के लिए बाध्य कर रही थी ?

काता थी यह, मुखिया की अपनी लड़की । अपने बाप की एकमात्र संतान—बेटा समझो तो यही और बेटी समझो तो यही ! पिछले ही बैसाख में गौना हुआ था, आजकल ससुराल में थी ।

बिना काता के, समूचा घर-आँगन मुखिया के लिए मसान था । मुश्किल से ये सात महीने कटे थे । माघ में आने वाली थी । मुखिया को काफी चिरौरी करनी पड़ी थी तब कहाँ काता के ससुराल वाले रखसदी के लिए राजी हुए थे ।

दामाद कलकत्ते में नौकरी कर रहा था, घड़ियों की किसी दूकान में किरानी का काम । गौना करा के ले गया सो पंद्रह रोज ही घर रहा अब होली की छुट्टी में आने वाला था ।

तेइस-चौबीस साल की आयु, दुहरा बदन, बड़ी-बड़ी आँखों वाला गोल-मटोल चेहरा, गेहुँआ सूरत...काफी मेहनत के बाद ऐसा अच्छा दूल्हा हाथ लगा था—ससुराल में दश दिन-रात पति के साथ बिताकर काता ने अपनी टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट में जो पोस्काट\* भेजा था, उसका एक-एक शब्द मुखिया को याद आ रहा था इस वक्त ।

आँखें तर हो आईं तो ध्यान में काता का वही मुग्धमुखमंडल चिकनी मिट्टी के पीताभ प्रलेप से पुत कर बिसेसरी का मुखड़ा बन गया !

—तू कौन है ?

—मैं ? काता हूँ मैं, वाह ! इतनी जल्दी भूल गये !

—नहीं, तू काता नहीं हो सकती ! हर्गिज नहीं !!

\*पोस्टकार्ड ।

—नहीं ! बाबा, मैं कांता ही हूँ...मगर—

—मगर ?

—मगर, मैं अब तक क्वारी हूँ ! दूल्हा होने को कोई राजी नहीं होता...तुम लोग एक बुड्ढे को ले आये थे, छोकरो ने उस अहमक को खदेड़ दिया । अब वह घूम-घूमकर समूची दुनिया में कहता फिर रहा है : मुखिया की बेटी की सेथ में सेंदुर तो मैं भर ही आया, अब गौना हो, चाहे नहीं हो...जहाँ कहा कोई मुझसे ब्याह करने को तैयार होता है, यह बुड्ढा जाकर उसे रोक देता है ! एक-दो नहीं, चार-चार आदमी बुड्ढे के बहकावे में आ चुके हैं ! बाबा, मैं जिंदगी भर अनब्याही रहूँगी ?

मुखिया बुदबुदा उठा—नहीं नहीं, बेटी, अबकी बड़ा अच्छा दूल्हा आ रहा है तेरे लिए ! तू भला क्वारी रहेगी ?...

उसने धोती के खूँट से आँखें पोल लीं । थोड़ी देर काठ-सा चेष्टाहीन बैठा रहा फिर लेट गया ।

पलके भिप गई ।

उधर खजन—पाठक की भतीजी और बीसो की सहेली बड़ी चतुराई से दूल्हा के बारे में तमाम बातें मालूम कर आई थी । कुछ तथ्य उसे दिगंबर की अम्मा से हासिल हुआ था और बाकी बूलो की भाभी से ।

नहाते समय जनाना घाट पर दोनों सहेलियाँ देर तक बैठने लगीं—  
दाउर\* की जगह मोटे काठ की एक गाँठ पड़ी थी, घुटने भर पानी में बाँस के दो छोटे खूँटों के सहारे बैठाकर अचल-अडिग कर दी गई थी । भीगे कपड़ों की चोट खा-खाकर उसका सीना सपाट और चिकना हो गया था । सुख-दुख बतियाने का अनूठा मंच था वह औरतों के लिए ।

ब्याह से पहले रोज की बात है :

खजन ने आँखें नचाकर कहा—ले, अब कितना उड़ेगी बीसो ?

---

\*दारु, काठ ( कपड़ा धोने-पछीटने के लिए ) ।

जवाब में एक जोड़ी संजीदा निगाहें उसकी ओर उठीं, उत्कंठा का आवेग दबाने में अच्छी सफलता हासिल कर ली थी उन्होंने ।

खंजन तनिक मुसकान उभार लाई अपने होठों के बाँध पर, फिर बिसेसरी की आँखों में झाँककर देखा—छून भर देखती रह गई, तब जाकर बोली—तेरा वो हिरामन तोता अपने मजबूत डैनों पर तुझे लिये-लिये उड़ता फिरेगा...

—भग् !

—मैं भूठ कहती हूँ ?

—खो: !

—फिर वही बात ?

बीसो के कान इस प्रकार की चुहलवाजी से अब तक बिल्कुल अनजान थे । उसका दिल बुरी तरह गुदगुदा उठा ।

अपनी लाज को ज्यादा बेपर्दा होने देना उसे जाने कैसा-कैसा लगा, सो, बिसेसरी अंजुरी भर पानी खंजन के सिर पर उछाल कर भर-छाती पानी में कूद पड़ी—भपाक् !

पानी से माथा बाहर निकाला तो खंजन की खिलखिलाहट ने उसके कानों में फिर मीठी चुभन पैदा कर दी.....

कुछ बोलना नहीं चाहती थी बीसो ! न हँसना चाहती थी न, मुसकुराना । भर मुँह पानी था ! पीठ फेर कर वह गर्दन और छाती मलने लगी ।

पीठ पर छितरे लंबे, काले बालों से पानी अब भी गिर रहा था गर गर गर गर गर—

अपने बहनोई के मीठे गले से गुनगुनाया हुआ विद्यापति का एक पद खंजन को याद हो आया । वह रेघाकर\* गाने लगी—

\*तरन्तुम में आकर, लय में आकर ।

चिकुर\* गरए जल-धा SS रा SS !

मुख शशि-डर जनि रोअए अन्हा SS रा SS !

बिसेसरी ने चीखकर कहा—अब मैं तुम्हें काट खाऊँगी ! ठहर जरा...  
ऊपर आकर वह खंजन की साड़ी का पल्ला खींचने लगी तो नंगी हो  
जाने के डर से वह भी भर-छाती पानी में कूद पड़ी ।

अब वे एक दूसरे में गुथी हुई थीं ।

बीसो ने उस पद का मतलब नहीं समझा था । रेघाते समय खंजन  
की मुद्रा और लय के क्रम ऐसे थे कि अश्लील-से, अ-परिचित-से भावों  
की उत्कट गंध मालूम पड़ी बिसेसरी को; नाहक !

इतने में नानी खुद इसी ओर आती दिखाई दी बीसो को । फिर  
दोनों शराफत की पुतलियाँ बन गईं और उसी तरह चुपचाप पानी से  
बाहर आने लगीं जैसे चरवाहे की उठी हुई लाठी देखकर भैंसें ।

## बीस

न्याह की सभी विधियाँ बिना किसी अड़चन के समपन† हो गईं ।

गाँव के बड़े-बूढ़े वर-वधू के माथे पर दूब-अच्छत छींटकर आशीर्वाद  
दे गये थे—फतूरी मुखिया, परमानन्द पाठक, जोतखीजी, भीनारायण  
प्रतिहस्त, जयनारायण मल्लिक, मधुसूदन कंठ, स्कूल के दो मास्टर...

तिरहुतिया ब्राह्मणों के रिवाज के मुताबिक, शादी के बाद की चौथी  
रात सुहागरात थी । आज ही दूल्हा-दुलहिन ने नमकीन खाना खाया था,  
आज ही वे साथ सोने वाले थे ।

\* बालों से पानी की धारा गिर रही है ।

मुखचंद्र के भय से मानो अंधकार रो रहा है !

† संपन्न, संपादित ।

ब्याह के बाद भी तीन दिनों तक बिसेसरी मानों क्वारी ही रही, साड़ी का पल्ला माथे पर तो आज आकर पड़ा था !

कल दुपहर को नानी सो गई थी । माँ कहीं गई थी । मभली मामी उड़द की भींगी दाल से छिलका निकालने गई हुई थी, पोखर । बड़ी मामी का बच्चा बीमार था, सो वह उसे अगोर रही थी । छोटी मामी किवाड़ उढ़काये घर में जाने कौन सा जप ठाने बैठी थी । मतलब यह कि अकैली बिसेसरी भनसा-घर के ओसारे पर खँभेली से पीठ टिकाये बैठी थी । सामने वह घर पड़ता था जिसमें दूल्हा का आसन था । उसी के अन्दर वर-वधू से गौरी का पूजन कराया जाता । दरवाजे के अलावा दो बड़े जंगल थे उसमें, आँगन में इसी ओर खुलते थे वे । एक जंगले से सटाकर तरलपोश थी उस घर में । जंगले की किवाड़ियाँ तिछ्छीं खुली थीं । दूल्हा बैठा दीख रहा था...

तब बिसेसरी ने जी भर अपने दूल्हे को देखा । गेहुँआ सूरत का वह तरुण सौंदर्य छोकरी को बड़ा ही मोहक लग रहा था—भरी-भरी सी पीठ, गोल-गोल ढाँहें, पुष्ट और मांसल कंधे, गोल माथा, काले-काले भँवरों-से बाल...और कंठ कैसा बढ़िया है ! ओह, तनिक सामने से देख पाती ! उँह !

दूल्हा भक्क थोड़े था ?

वह भी तो नयनसुख के इस व्यवसाय का साभीदार था ही !

चट से सामने की ओर मुँह करके बैठ गया ।

पल भर के लिए आँखें चार हुईं ।

धुप्प-अँधेरे की टार्च सा अनुभव हुआ...फिर कहाँ बैठी रह पाई बिसेसरी, मुँह फेरकर उठ गई और तनिक आड़ में जाकर खड़ी रही । गाढ़ी मुसकान से समूचा मुख-मंडल अरुणाभ हो उठा था ।

\* रसोईघर ।

दूल्हा घर से बाहर निकलता आँगन की ओर, तो यों नहीं निकल जाता था, खड़ाऊँ की खटखटी अलार्म बजती फिर घर-आँगन के लोग सावधान हो जाते : ओम्हा बाहर निकलेंगे !

लेकिन उस वक्त तो कल गजब कर दिया दूल्हे ने !

बिसेसरी आड़ में खड़ी-खड़ी कहीं चलकर सोने की बात सोच रही थी । फिर जँभाई आ गई उसे और फिर अँगड़ाइयाँ लेने को बाहें ऊपर उठने लगीं—

कड़ाई से बाँहों को बीसो ने ऊपर उठाया ।

अब पीठ की रीढ़ तनने जा रही थी...

चोली या आँगी भला इन तीन दिनों के अन्दर बदन पर कहीं कोई डालती है ?

सोने पर की साड़ी सिमटकर एक ओर को हो गई थी ।

पीठ की रीढ़ को तानकर कमर में छोकरी ने भटका दिया ही था कि दूल्हा बिल्ली की तरह पैर मारकर निकला और आँगन के बीचो-बीच आ के खड़ा हो गया !

नजरे मिलीं तो बिसेसरी धड़फड़ाकर रसोई घर के अंदर घुस गई !

दूल्हा कुछ देर तक मुसकुराता रहा—

आर, आज क्या होगा ?

आज ? आज तो रात भी अपनी है, आदमी भी अपना है !

## इक्कीस

मम्हली मामी ने बिसेसरी को दूल्हे वाले घर का दरवाजा टपाकर भीतर पहुँचा दिया, बाहर से किवाड़ उड़का दिये और हट गई ।

दूल्हे की पलकें तनिक भिप आई थीं, सो पायल की रुनभुन और गहनों की खनखनाहट से चंचल हो उठीं ।

अग्रहन का उजेला पाख ।

रात डेढ़ पहर से ऊपर नहीं हुई होगी ।

बाहर साफ और सुहावनी अंजोरिया\* का राज था ।

जंगल की किवाड़ियाँ डेवढ़ लगी थीं, उनके फाँकों में से होकर हेमंती ओस की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी—मिठासभरी-सर्दवाला तरुण समीर इस काम में उसकी मदद कर रहा था ।

तख्तपोश पर आज बिस्तरा बाकायदा था ।

नीचे काँसे की पीकदान थी ।

सूरजछाप वाले मटियातेल से भरी नये मॉडल की अमेरिकन लालटेन मद्धिम करके एक ओर रखी थी...

दूल्हा आहिस्ते से उठ बैठा, लेटा हुआ था न !

देखा, धानी रंग का रेशमी साड़ी में अपने की पूरी तरह ढँके हुए दुलहिन दरवाजे के करीब खड़ी है । घूँघट का झुका छोर बता रहा था कि वह माथा झुकाये खड़ी है ।

दूल्हा बिस्तरे से नीचे उतरा, खड़ा नहीं डाली पैर में । जाकर पहले किवाड़ों का बिलइया लगा दिया फिर बाँहों से थामकर दुलहिन को तख्त पोश के निकट ले आया । उसके कंधे दबाकर फुसफुसाया—बैठ जाओ !

वह बैठ गई । तब दूल्हा भी तनिक हटकर बैठा ।

—अब इसकी क्या जरूरत है ?

घूँघट हटा दी गई तो दुलहिन ने अपनी नजरों को चुरा लिया, होठों को जन्त किये रही ।

—आखिर कब तक ?

कुछ जवाब नहीं, इशारा तक नहीं ! वह प्रतिमा की तरह बैठी रही । पैर तख्तपोश से नीचे लटक रहे थे ।

---

\*चाँदनी ।

—अच्छा, आओ, दो बाजी ताश खेल लें ! सुना है, खूब खेलती हो ।

—ईह ! ताश है कहाँ ?

है कि !

दूल्हे ने लाख कोशिश की मगर वह अपनी मुसकान को पचा नहीं पाया, उसे मुसकुराते देखकर दुलहिन शरमा गई कि बिना 'मुँह-बजावन' \* के ही वह बोल पड़ी !

—सिरहाने से ताश निकालकर दूल्हा पाल्थी लगाकर बैठा ।

—आओ, आमने-सामने बैठो ! मैं पत्ती बाँटता हूँ, तुम रंग बोलो ! जादूगर की छोकरी जैसी दुलहिन सामने हो गई !

आधी पत्तियाँ ही बटी थीं कि दूल्हे को कुछ याद आया । ताश छोड़कर वह तख्तपोश के नीचे झुका । अपनी लीडराना अटैची खोलकर कोई चीज निकाली । फिर आमने-सामने होकर उसने दुलहिन का दाहिना हाथ माँगा कि देखेगा ।

हथेली फैली तो उस पर दूल्हे ने सोने की एक अँगूठी धर दी...

बिसेसरी ने उठाकर गौर से देखा—'वाचस्पति' अंकित था नीले हरफों में मुंदरी के मत्थे पर...मुसकुरा कर बोली—यही नाम है ।

हाँ, यही नाम है मेरा !—दुलहिन के गाल पर मीठी चपत लगाकर दूल्हा हँसा तो दुलहिन तनिक भँप गई ।

—लाओ, पहना दूँ ! मगर अपना नाम तो बताओ...

—बिसेसरी !

“\*बिना कुछ लिये मुँह से एक शब्द भी न निकालना”—दुलहिन को यह सिखा दिया जाता है, दूल्हा कोई वस्तु (या नगद) 'बोलावन' के तौर पर देता है, तभी वह मुँह खोलती है ।

लाज और संकोच से संपुटित मृदु-मन्द स्वर वाचस्पति के कानों को ग्लेसरीन की तरह शीतल एवं सुखस्पर्श लगा ।

—घर के लोग क्या कहते हैं ?

—बीसो ।

—माँ क्या कहती है ?

—कभी बुचिया, कभी बुच्चनि...

वाचस्पति त्रिसेसरी के दाहिने हाथ की अनामिका उँगली में अँगूठी डालने की कोशिश कर रहा था ।

गोरी, छःहरी...नुकीली नाक, फॉस सी आँखें, ढले-उभरे गाल, चौड़ा कपार, काले-लंबे बालों का भारी जूड़ा...और टुड्डी व होठ दोनों तो साँचा पर से अभी-अभी निकले हैं...उम्र पन्द्रह होगी या सोलह ?

कैसी मृदुमूर्त जीवन-संगिनी मिली है उमे !

अँगूठी आविर आ गई उस अँगुली में—बीसो के काजल वाले बेनैन लालटेन की मद्धिम रोशनी में भी एक अनूठी चमक से जगमगा उठे ।

मैं लेकिन तुम्हें बिस्सी कहा करूँगा—वाचस्पति ने कहा और अपने उतावले होंठ त्रिसेसरी के बाएँ गाल की तरफ बढ़ा दिये...









